ISSN 2582-0885

स्रवंति

స్రవంతి

मासिक पत्रिका

మాసపత్రిక

मई : 2023

मूल्य : ₹ 15/-

మే : 2023

వెల : ₹ 15/-

रांगेय राघव विशेषांक-2

दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा-आंध्र प्रदेश तथा तेलंगाणा

(Provincial Branch of Dakshina Bharat Hindi Prachar Sabha, Madras)

(Declared by Parliament as an Institution of National Importance by Act 14 of 1964)

खैरताबाद, हैदराबाद - 500 004, फोन - 040-23316865

Email : dbhpsandhra@yahoo.co.in Website : www.dbhpsapts.com

उच्च शिक्षा और शोध संस्थान

दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा-आंध्र प्रदेश तथा तेलंगाना

'डॉ. अंबेडकरवादी दर्शन एवं स्त्री' विषयक विशेष व्याख्यानः 29 अप्रैल, 2023

विभिन्न प्रतियोगिताएँ: सबसे आगे निकलना है

स्रवंति

मासिक पत्रिका

मई - 2023

ISSN : 2582-0885

वर्ष 68 | केंद्रीय हिंदी निदेशालय, शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार के अनुदान से प्रकाशित | अंक 2

संपादक

जी. सेल्वराजन

सचिव (प्रभारी)

ए. जानकी

सह संपादक

डॉ. जी. नीरजा

neerajagurramkonda@gmail.com

मूल्य : ₹ 15/-

वार्षिक शुल्क : ₹ 150/-

dbhpsandhra@yahoo.co.in

दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा
आंध्र प्रदेश तथा तेलंगाणा
(Declared by Parliament as an Institution of National Importance by Act 14 of 1964)
खैरताबाद, हैदराबाद - 500 004.
फोन : 040-23316865
website : dbhpsapts.com

रांगेय राघव विशेषांक - 2

संपादकीय

▲ स्वावलंबन की चरम सीमा है अपनी बोली मात्र का ज्ञान 4

मध्यांतर

▲ आलूरि बैरागी की कविताएँ 23

स्मरण में है आज जीवन : 12

▲ विद्यानिवास मिश्र : एक सन्नाटा अटूट — दिलीप सिंह 7

आलेख

▲ सामान्य जन का अनूठा रचनाकार:रांगेय राघव — सन्दीप तोमर 14

▲ रांगेय राघव : हिंदी साहित्य का खरा सोना — कुसुम लता जोशी 16

▲ 'कब तक पुकारूं' में नट-जीवन का मुकम्मल यथार्थ — किरण कुमारी 19

▲ हिंदी साहित्य के अनन्य उपासक — विजनंपाटि यशोधरा 27

▲ नट समुदाय का जीवंत दस्तावेज़... — उपमा शर्मा 30

▲ नारी विमर्श के दर्पण में रांगेय राघव — जयप्रकाश नागला 34

▲ बंगाल का भीषण अकाल:'तूफानों के बीच' — ऊर्मिला कुमारी 36

तेलुगु खंड

▲ అమ్మ: అమృత కలశమ్ — రాధాకృష్ణ మిరియాల 40

गतिविधियाँ 44

'स्रवंति' में प्रकाशित रचनाकारों के विचार स्वयं उनके हैं। अत: संपादक का उनसे सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

संपादकीय...

स्वावलंबन की चरम सीमा है अपनी बोली मात्र का ज्ञान

'रंग-भेद से बनी सभ्यता
वर्ग-भेद से विकल समाज
जन्म-भेद से सुख दुःख मिलते
जीवन भर विकृत अभिशाप

अधिकारों के अहंकार में
जीवन नित्य नई पीड़ा
यहाँ ज्ञान का दीपक धुंधला
जलता है, कायर कीड़ा (अजेय खंडहर)

कहकर अपने आक्रोश को व्यक्त करने वाले रचनाकार हैं रांगेय राघव। समाज में व्याप्त रंग-जाति-वर्ग आदि भेदों को देखकर वे विचलित हो जाते हैं क्योंकि ये भेद जीवन भर के लिए अभिशाप बनकर हमारे सामने नाचते रहेंगे। वे इन सबसे ज्यादा भाषा की समस्या को लेकर विचलित हो उठते हैं।

भाषा की समस्या एक गंभीर और विकट समस्या है। 1956 में प्रकाशित अपनी कृति 'संगम और संघर्ष' में रांगेय राघव ने यह स्पष्ट किया है कि "आज भी भाषा की समस्या उतनी ही विकट है, जितनी वह आज से दस वर्ष पहले थी। अब भी इस विषय पर विद्वानों की अलग-अलग रायें हैं। हिंदी को सरकारी तौर पर राष्ट्रभाषा (राजभाषा-सं) स्वीकार कर लिया गया है। हिंदी का मान कुछ बढ़ा भी है, परंतु अभी तक भाषा के रूप में हिंदी को वह जगह नहीं मिली जो यूरोप के देशों की भाषाओं को अपने-अपने देश में प्राप्त है। अंग्रेजी का भारत में अब भी बोलबाला है।" (रांगेय राघव, संगम और संघर्ष, पृ. 73)। रांगेय राघव ने यह बात 1956 में कही थी, लेकिन 67 वर्षों के बाद भी यही स्थिति है। आखिर हम पहुँचे कहाँ हैं? यह सोचने और विचारने की बात है।

भाषा की समस्या वास्तव में सबसे बड़ी समस्या है। भाषा के नाम पर देश और राष्ट्र विभाजित हो चुके हैं। आपसी मनमुटाव फैलता जा रहा है। रांगेय राघव सरकारी अफसर और नेताओं को अंग्रेजी खाद से उगे हुए पेड़ मानते हैं। उनमें जो फल लगते हैं वे अंग्रेजी स्वाद देते हैं। यही कारण है जो सम्मान और गौरव विदेशों में अपनी भाषा में लिखने से लेखकों को प्राप्त होता है, अब भी भारत में नहीं होता। हमारे देश के नेता भारत की भाषा और संस्कृति की या तो रूढ़िवाद के नाते लीक पीटते हैं, या अंग्रेजी पटरियों पर उनकी बुद्धि की रेल चलती है।" (वही, पृ. 74)। चालबाज नेताओं के संबंध में वे कहते हैं कि "स्वार्थी नेताओं ने जो अपनी गद्दियाँ कायम रखने की कोशिश की हैं, उससे वे कोशिशें और चालबाजियाँ करते हैं। कभी अंक अंग्रेजी में रखकर, कभी शब्द अंग्रेजी में रखकर। वे भाषा को दूसरों पर थोपते हैं, उनकी नजर में भाषा विज्ञान नहीं है।" (वही)। उन्होंने इस

ओर भी याद दिलाया कि निजाम के समय में हैदराबाद में भाषा को दो राष्ट्रों के सिद्धांतों पर बनाया जा रहा था। और उसमें "फूटपरस्ती का बीज डाला गया था।"(वही)।

भारत के परिप्रेक्ष्य में भाषा समस्या की बात करें तो मानना होगा कि हिंदी, उर्दू, हिंदुस्तानी का झगड़ा बहुत पुराना है। दक्षिण भारत में गांधी जी का प्रभाव था। इस प्रभाव के करण ही दक्षिण में हिंदी को हिंदुस्तानी कहकर स्वीकार किया गया था। लिपि में परिवर्तन करने की अवश्य कोशिश की गई थी। जैसे- 'क्ष' को 'क्ष' के रूप में। (वही, पृ. 75)। हिंदी और उर्दू के झगड़े के संबंध में रांगेय राघव का कहना है कि "उर्दू को अब पाकिस्तान मिल गया है। हिंदी उसका बदला लेना चाहती है। पर उर्दू का ख्वाब बंगाली तोड़ रही है। हिंदी का सपना तोड़ने के लिए कई भाषाएँ हैं। उर्दू वाले पंजाबी और उत्तर प्रदेशीय मुस्लिम बंगालियों के भाषा प्रयत्नों को हिंदी षड्यंत्र मानते हैं, और हिंदी वाले हिंदी-विरोधियों के।"(वही)

रांगेय राघव भाषा की समस्या को दूर करने का उपाय बताते हुए कहते हैं कि 'विराट सम्मिलन में भाषा का प्रश्न न साम्राज्यवादी ढंग अपना सकता है, न उससे विद्वेष ही जन्म लेता है। हिंदी ही अपनी व्यापकता के कारण राष्ट्रभाषा का स्थान ले सकती है। फिर भाषा को गढ़ने की आवश्यकता नहीं रह जाती, स्वयं हिंदी-उर्दू के मिलने से भाषा के विकास का रास्ता खुल जाता है। संसार के देश एक-दूसरे के पास आ रहे हैं। जनता मिलना चाहती है। यदि राष्ट्रभाषा की आवश्यकता नहीं, तो अंतरराष्ट्रीय भाषा की भी आवश्यकता नहीं है। स्वावलंबन की चरम सीमा अपनी बोली मात्र का ज्ञान है। दुर्भाग्य से आज उससे सारी समस्याएँ हल नहीं हो सकतीं। राष्ट्रभाषा इसीलिए आवश्यक है।" (वही, पृ. 86)

रांगेय राघव की सोच सकारात्मक है। उन्होंने अपने साहित्य में हर विषय पर निष्पक्ष राय दी है। यह वर्ष रांगेय राघव का शताब्दी वर्ष है। 'स्रवंति' के 'रांगेय राघव विशेषांक - 1' को आप सब ने सराहा। इसी क्रम में 'रांगेय राघव विशेषांक - 2' अब आपके सामने है।

इस अंक में रांगेय राघव के व्यक्तित्व और कृतित्व पर केंद्रित तीन आलेख सम्मिलित हैं। संदीप तोमर ने अपने आलेख में रांगेय राघव को सामान्य जन का अनूठा रचनाकार सिद्ध किया है तो डॉ. कुसुम लता जोशी ने उन्हें हिंदी साहित्य का खरा सोना। डॉ. विजनंपाटि यशोधरा ने उनके व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाश डाला है।

रांगेय राघव का नाम लेते ही 'कब तक पुकारूँ' उपन्यास का स्मरण हो आना स्वाभाविक है। इस उपन्यास में रांगेय राघव ने पूर्वी राजस्थान के विशेष आदिवासी वर्ग करनटों के जीवन और उनकी संघर्ष-गाथा को बखूबी चित्रित किया है। करनट जरायम पेशा जीवन व्यतीत करते हैं। नटों और करनटों के बीच निहित अंतर को स्पष्ट करते हुए रांगेय राघव लिखते हैं कि "नट हिंदू ही हैं। वे करनटों को अपने से नीचा समझते हैं। करनटों के जिजमान नहीं होते। पर इस गाँव के करनट नाचते हैं, खेल भी करते हैं। औरतें ज्यादातर नाचती हैं। कोई-कोई लड़की कला भी दिखाती है। ये लोग सबसे भीख माँगते हैं।" (कब तक पुकारूँ, भूमिका)। इस उपन्यास को

लिखने के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं कि 'मैंने इनकी नैतिकता को समाज का आदर्श बनाकर प्रस्तुत नहीं किया है; बल्कि पाठकों को इसमें सेक्स को ऐसी जानकारी के रूप में हासिल करना चाहिए कि यह इनमें होता है। यह सारा खानाबदोश समाज घोर उत्पीड़ित है, शोषित है। न इनके ये सामाजिक नियम शाश्वत हैं, न हमारी नैतिकता के बंधन ही शाश्वत हैं।" (वही)। इस उपन्यास का पहला नाम था 'अधूरा किला।' इस अंक में 'कब तक पुकारूँ' उपन्यास पर केंद्रित दो आलेख सम्मिलित हैं-'कब तक पुकारूँ' में नट-जीवन का मुकम्मल यथार्थ (डॉ. किरण कुमारी) तथा नट समुदाय का जीवंत दस्तावेज़ : 'कब तक पुकारूँ' (डॉ. उपमा शर्मा)।

बंगाल का अकाल एक भीषण त्रासदी थी। रांगेय राघव ने इसे मानवता का एक बहुत बड़ा कलंक माना है। बंगाल के इस अकाल का आँखों देखा हाल 'तूफ़ानों के बीच' (1946) रिपोर्ताज में वर्णित है। इसके संबंध में स्वयं लेखक कहते हैं कि शायद क्लियोपैट्रा भी धन के वैभव और साम्राज्य की लिप्सा में अपने गुलामों को इतना भीषण दुख नहीं दे सकी जितना आज एक ओर अपने ही देश के पूँजीवाद ने बंगाल के करोड़ों आदमी, औरतों और बच्चों को भूखा मारकर दिया है। ... मैंने यह सब आँखों देखा लिखा है। बंगाल की भुखमरी तब तक समाप्त नहीं होगी जब तक हमारा देश आजाद नहीं हो जाएगा। और मेरा विश्वास है कि भूख के विरुद्ध लड़कर जनता ने अपनी महान शक्ति का परिचय दिया है।" (तूफ़ानों के बीच, भूमिका)। डॉ. उर्मिला कुमारी ने अपने आलेख में 'तूफ़ानों के बीच' के बहाने रांगेय राघव की मानवतावादी दृष्टि का परिचय दिया है।

रांगेय राघव अपने साहित्य में स्त्री को अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान देते हैं। उनकी स्त्री निडर, दृढ़निश्चयी और हर मुश्किल का डटकर सामना करने वाली है। डॉ. जयप्रकाश नागला ने रांगेय राघव की स्त्री दृष्टि को उकेरा है।

'स्मरण में है आज जीवन' शीर्षक से प्रो. दिलीप सिंह की लेखमाला जून 2022 के अंक (नरेश मेहता विशेषांक -1) से शुरू की गई थी। उन्होंने अनेक भाषाविदों, साहित्यकारों और परम आत्मीयों की स्मृति को समेटा है। इस शृंखला की बारहवीं किस्त उनके गुरु पंडित विद्यानिवास मिश्र की यादों को समर्पित है।

मध्यांतर में आंध्र प्रदेश के प्रसिद्ध कवि आलूरि बैरागी की कविताएँ दी गई हैं। तेलुगु खंड में मातृदिवस के विशेष संदर्भ में 'अम्मा : अमृत कलशम्' (माँ : अमृत कलश, राधाकृष्ण मिरियाला) शीर्षक निबंध प्रकाशित किया जा रहा है।

विशेषांक पर आपकी प्रतिक्रिया और टिप्पणियों के स्वागत है।

(सह संपादक)

स्मरण में है
आज जीवन:12

विद्यानिवास मिश्र
एक सन्नाटा अटूट

- दिलीप सिंह
निदेशक, लुप्तप्राय भाषा केंद्र, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय जनजातीय विश्वविद्यालय, अमरकंटक - 484886 (मध्यप्रदेश)

ललित निबंधों के शीर्ष रचनाकार; भाषा, साहित्य, धर्म और संस्कृति के प्रखर अध्येता, मूर्धन्य संपादक, लोक-चेतना के व्याख्याता... पं. विद्यानिवास मिश्र। राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन, श्री नारायण चतुर्वेदी, राहुल सांकृत्यायन, प्रो. क्षेत्रेश चंद्र चट्टोपाध्याय और अज्ञेय के सान्निध्य में अपनी प्रतिभा को परवान चढ़ाने वाले - पं. विद्यानिवास मिश्र। भारत के अपने समकालीन भाषाविदों और साहित्य सर्जकों के चहेते। पाणिनि व्याकरण के विवेचक।... पंडित जी के इन सरूपों से हिंदी जगत परिचित है। उनके इन रूपों पर लिखा भी बहुत कुछ गया है। मैंने भी लिखा है।

मेरी स्मृतियों में पंडित जी का वह रूप भी बसा हुआ है जो इन भारी-भरकम 'सरूपों' से नितांत भिन्न है। 'मानुस भाव' से लबालब और ठेठ 'गँवई' संस्कारों में रचे-बसे पंडित जी। स्नेह के सागर पंडित जी जो हमारे ऊपर जितना ही प्रेम लुटाते थे, हम उनके प्रति उतने ही विनत होते जाते थे। पंडित जी का अटल विश्वास 'सामाजिक आचरण' में था। हम उनका चरण-स्पर्श करते, उनके समक्ष जब तक वे न कहें बैठते नहीं थे, उनसे कम बोलते या थोड़े में अपनी बात कहते थे। उनके एक-एक संकेत और निर्देश का हम पालन करते थे। उनका अतिशय आदर करते थे। जो आचरण और संस्कार के सत्व को नहीं पहचानते, उन्हें ये क्रियाएँ अजीब या अनावश्यक लग सकती हैं, लगती भी थीं पर गुरु के साथ शिष्टाचार के ये ऐसे मंत्र थे जिन्होंने हमें वैसा बनाया है, जैसे आज हम हैं। पंडित जी की इस 'आचार-शिक्षा' को भूल पाना आसान नहीं है। मैं एक ऐसी पारिवारिक पृष्ठभूमि से पंडित जी के पास गया था जिसमें आचार-विचार की परंपराएँ शुष्क हो चली थीं। मैं उनकी छाया में पहुँच कर एकदम बदल गया था। ओस की बूंदें पड़ीं तो शुष्कता लुप्त हो गई। आचरण और संस्कार की कोंपलें फूटने लगीं।

फिर हमें प्राप्त होता था पंडित जी का अथाह स्नेह। उनके स्नेह-दान का भी अपना 'आचरण' था। कठोर आचरण और संयत व्यवहार के बीच से स्नेह-निर्झर की एक पतली धारा सरसती थी जिसमें माटी की गंध होती थी, सोंधी-सोंधी, ओदी-ओदी। मेरे सामने तो उन्होंने अपनी स्नेह-दधि की 'कहथरी' पूरी की पूरी अनावृत्त कर के धर दी थी। उन्हें हैदराबाद से पत्र भेजा था तो अंत में लिख दिया था - दीदी को सादर चरण स्पर्श निवेदित कर रहा हूँ। छुट्टियों में बनारस आया तो मिलने गया। उनकी पत्नी राधिका देवी को सामान्यतः सभी लोग 'माता जी' कहा करते थे। मेरी चिट्ठी का जिक्र करके खूब हँसे और दीदी से भोजपुरी में बोले दिलीप, तोहरा के बहिन मनले बाड़न, अब इनकर तीन गो बहिनी हो गइलीं। दीदी स्नेह से मेरी ओर देखती रहीं। पंडित जी की अब कभी चिट्ठी आती तो वे लिखते - तुम्हारी दीदी तुम्हें असीस रही हैं।

पंडित जी से मेरी समक्ष भेंट 1973 में हुई थी। उसके पहले जब मैं बी.ए. में था तो मेरे कॉलेज में आए थे, डीएवी कॉलेज में। स्वामी दयानंद सरस्वती पर विद्यार्थियों को संबोधित किया था। फिर उन्हें सुना था 'तुलसी महोत्सव' के कार्यक्रम में - काशी हिंदु विश्वविद्यालय में। मैं एम.ए. कर रहा था। उन्होंने पार्वती मंगल, जानकी मंगल, रामलला नहछू के माध्यम से तुलसी की लोक-चेतना को रेखांकित किया था। पूर्वी उत्तर प्रदेश के गाँव-गिराँव के वैवाहिक संस्कारों में आज भी 'बाबा' की इन कृतियों में वर्णित रीतियों का अनुसरण किया जाता है, यह बताया था। उनके व्याख्यान से प्रभावित होकर ही मैंने ये रचनाएँ पढ़ी थीं। आज भी अक्सर पढ़ता हूँ। पढ़ता रहता हूँ। पंडित जी को याद कर-कर के। ये तीनों कृतियाँ मुझे अपने घर-परिवार के 'विवाह मंडप' में ले जाकर खड़ा कर देती हैं। पंडित जी के साथ कर देती हैं।

आमने-सामने मैं उनसे मिला था - संपूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय वाले 'टीचर्स क्वार्टर' में। दो मंजिल का भवन था। नीचे पूरा घर, ऊपर एक बड़ा कमरा। पंडित जी सुबह-शाम ऊपर ही बैठते थे। वहीं पढ़ते-लिखते थे। वहीं मिलते-जुलते थे। कुछ खास लोग ही उनसे नीचे मिल सकते थे। थोड़े ही अर्से में मैं इन 'खास लोगों' की श्रेणी में आ गया था। तो मैं एम.फिल. (भाषाविज्ञान) का फॉर्म लेकर उनकी 'सही' कराने गया था। ऊपर के कमरे में अपनी चौकी पर बैठे थे। दो-चार लोग और नीचे बिछी दरी पर विराजमान थे। मैंने चरण स्पर्श किया। फॉर्म मेरे हाथ में वे देख चुके थे। उन्होंने हाथ बढ़ाया, मैंने फॉर्म पकड़ा दिया। बोले, भाषाविज्ञान का क्या-क्या पढ़े हो। मैंने बताया कि धीरेंद्र वर्मा, देवेंद्रनाथ शर्मा, कैलाशचंद्र भाटिया को भी पढ़ा है। बोले, अच्छा कोर्स के अलावा भी पढ़ते हो। बात करते-करते ही वे हस्ताक्षर कर चुके थे। तब पंडित जी पतली-सी मूँछ भी रखते थे। बाल और मूँछ एकदम काले थे। स्थूलकाय भी नहीं हुए थे। पर मोटे फ्रेम का चश्मा आँखों पर चढ़ चुका था। मैं चरणस्पर्श करके निकलने को हुआ तो बोले, परसों से कक्षा प्रारंभ होगी। सुबह साढ़े सात बजे यहीं चले आना। मैं सिर हिला कर नीचे उतर आया। क्लास और साढ़े सात बजे सुबह से? मैं पहुँचा तो वे नीचे के कमरे में तैयार बैठे थे। एक विद्यार्थी वहाँ और थे - धर्मचंद जैन। उन्होंने मुझे चाबियों का एक गुच्छा दिया और हम दोनों से बोले कि - जाओ आगे बढ़कर क्लास रूम खोलो। हम तेज़ कदमों से आगे-आगे चले और वे आराम से पीछे-पीछे। यह भाषाविज्ञान और विदेशी भाषा विभाग था। चार कमरों और बड़े क्लास रूम का संकुल। सामने छोटा-सा लॉन था। कमरों के आगे खंभेदार खुले बरामदे थे। हमने कक्षा खोल दी। अटेंडर हरि ने डस्टिंग-वस्टिंग करके चॉक का डिब्बा और डस्टर टेबल पर रख दिया। विद्यार्थियों के लिए अलग-अलग टेबल-कुर्सी थोड़ी-थोड़ी दूर पर लगी थीं। आठ बजते-बजते सात छात्र और आ गए। पंडित जी पहले ही अपनी कुर्सी पर आकर बैठ चुके थे। यह कक्षा आठ से दस बजे तक चलती थी। फिर दो अतिथि व्याख्यान। और एक घंटे लाइब्रेरी। एक बजे हम खाली हो जाते। पहले दिन पंडित जी ने भारतीय भाषाविज्ञान, आधुनिक भाषाविज्ञान का महत्व बताया और अमेरिका तथा यूरोप के भाषावैज्ञानिक किस दिशा में काम कर रहे हैं, यह जानकारी दी। उन्होंने तीन किताबों के नाम नोट कराए जो हमें लाइब्रेरी में पढ़नी थीं, नोट्स लेने थे। पहली किताब थी - **भाषाशास्त्र की रूपरेखा** (डॉ. उदयनारायण तिवारी), दूसरी थी - **भाषाविज्ञान में प्रचलित विचारधाराएँ** (प्रो. एस.के. वर्मा) तथा तीसरी

थी - **भाषा और समाज** (डॉ. रामविलास शर्मा)। पंडित जी नींव की ईंटे सरिया-सरिया कर रखना जानते थे। पं. करुणापति त्रिपाठी, डॉ. भोलाशंकर व्यास, विश्वनाथ मिश्र, शुकदेव सिंह... अतिथि व्याख्यान देने आते। अतिथि व्याख्यान का अर्थ था किसी प्रश्न-पत्र के एक पूरे हिस्से को पढ़ाना। ये सभी भाषा-चिंतन में डूबे हुए आचार्य थे। कोई भाषाविद् बाहर से आता तो उसका भी व्याख्यान होता। विदेशी भाषा विभाग के अध्यापक भी लेक्चर देने आते थे।

पंडित जी के स्नेह का पता अब मुझे उन्हें उनके संकेतों से चलने लगा था। एक बड़ा संकेत शीघ्र ही घटा। मैं गया तो उन्होंने मुझे एक फॉर्म थमा दिया, मैंने उन्हीं के सामने उसे भर दिया। नीचे उन्होंने अपनी तगड़ी संस्तुति लिख दी। यह 'समर स्कूल' का फॉर्म था। मुझे चयन की चिट्ठी मिल गई। चंडीगढ़ जाना था। मैंने दिल्ली पहुँच कर चंडीगढ़ की बस पकड़ ली। पंडित जी को दस दिन बाद आना था। वे आए। तब उनके व्यक्तित्व के नए-नए राज़ मुझ पर खुले।

एक तो यह कि उन्हें ताश खेलना बहुत पसंद था। 'ब्रिज' और 'रमी' के रसिया थे - आत्मलीन होकर खेलते थे। श्रीवास्तव, कालरा, मैं और वे शाम को घंटा भर 'रमी' खेलते थे। खेल में उनकी तल्लीनता और टिप्पणियाँ कही-बताई नहीं जा सकतीं। वे ताश के पत्तों में - गुलाम को दास, बेगम को साम्राज्ञी, बादशाह को सम्राट और जोकर को विदूषक कहते थे। ताश का 'जोकर' बहुत शक्तिशाली होता है। वह 'सीक्वेंस' तैयार करने में किसी भी पत्ते की जगह ले सकता है, यहाँ तक कि 'सम्राट' और 'साम्राज्ञी' की जगह भी। पंडित जी के पास 'विदूषक' आ जाता तो वे प्रसन्नता मिश्रित ऐसी ध्वनि निकालते थे कि सभी यह समझ जाते थे कि पंडित जी को उनका विदूषक मिल गया है। खेल की पूरी अवधि को वे जीवंत बनाए रखते थे। उन पलों में लगता ही नहीं था कि वे 'पंडित विद्यानिवास मिश्र' हैं। ताश के वे कसीदे भी पढ़ते थे। एक दिन खेलते समय बोले - रवीन्द्र, क्या तुम जानते हो कि जो ताश नहीं खेलता वह किसी की हत्या भी कर सकता है।

ताश गोष्ठी के बाद 'लॉन गोष्ठी' जमती। गीत-गज़ल-काव्य पाठ के दौर चलते। तभी यह रहस्य भी खुला कि पंडित जी कविता भी करते हैं। वे कभी-कभार इनका पाठ भी करते थे। श्रीवास्तव भी करते थे। पंडित जी विदेशी कविताओं के हिंदी अनुवाद भी सुनाते थे। ध्वनियों का उच्चारण तथा उतार-चढ़ाव उनके कविता पाठ में अतिरिक्त रस-वृद्धि कर देते थे। उनके भाषणों को भी यह 'ध्वनि-नियंत्रण' एक अद्भुत छटा से भर देता था। हमें यह सौभाग्य मिला था कि हम उन्हें बरसों-बरस, रोज़-रोज़ सुन सके। और यहाँ चंडीगढ़ में भी सुन रहे थे। यह रस मेरी स्मृतियों में निरंतर बरसता रहा है। वे थे तब भी और वे नहीं हैं तब भी। इसी रस ने मुझे सिंचित किया है।

चंडीगढ़ में ही एक मज़ेदार घटना घटी। पंडित जी के गँवई संस्कार और मस्ती का साक्षात्कार हुआ। एकदम आकर्षक। मोहक। निश्च्छल। खिलखिलाते पंडित जी। उस दिन हल्का पानी पड़ रहा था - झीना-झीना। खेल के दौरान कालरा बोले - पंडित जी, चाय-पकौड़ी का मौसम हो गया। पंडित जी अचानक मुझसे बोले, जाओ कह दो, पकौड़ी बनाएँ। दीदी (तब मैं उन्हें कोई संबोधन नहीं देता था) साथ आई थीं और पूरी गृहस्थी भी

साथ लाई थीं - दो स्टोव, एक दमकला (अंगीठी), बर्तन, मसाले...। दीदी को सूचना मिली तो उनकी पहली चिंता थी कि - केतना मनई बाटे (कितने लोग हैं)। मैंने कहा, दस-पंद्रह तो हो जाएँगे। अब बेसन, कड़ुआ तेल (सरसों का तेल), आलू-प्याज-हरी मिर्च-बैंगन सब लाना था। गनीमत थी, बाजार पास में ही था। हम दो-तीन युवक गए। किसी ने बेसन फेंटा, सब्जियाँ काटी गईं। अंगीठी जला दी गई। पंडित जी के कमरे के सामने का पूरा बरामदा रसोई बन गया। दीदी ने अंगीठी संभाली। कड़ाही बहुत बड़ी नहीं थी। सब लोग आकर लॉन की घास पर बैठ गए। पंडित जी भी। सबको अखबार के टुकड़े पकड़ा दिए गए। पकौड़ियों की 'घान' निकलती रही। वितरण होता रहा। स्टोव पर चाय चढ़ गई थी। असुविधा के इस आनंद में लिप्त पंडित जी बोल उठे, यह सीता रसोई है। खुले आकाश के नीचे संपन्न यह 'भोज' भूले नहीं भूलता। पंडित जी बड़े विनोदपूर्ण ढंग से सबसे और पकौड़ी लेने की मनुहार कर रहे थे। उन्हें इस बात की तनिक भी परवाह नहीं थी कि पकौड़ी के लिए हमने और दीदी ने कितने 'खटकरम' किए हैं। दीदी भी आनंद से खिली जा रही थीं।

चंडीगढ़ में 'बाहरी पब्लिकेशंस' ने स्टॉल लगाया था। मैंने दो पुस्तकें खरीदी थीं, छोटी-छोटी; द सोशल मीनिंग ऑफ लैंग्वेज (जे.बी. प्राइड : 1971) और ए लिंग्विस्टिक थ्योरी ऑफ ट्रांसलेशन (जे.सी. कैटफर्ड : 1965)। पुस्तकें लेकर निकला तो वे बरामदे में टहल रहे थे। मेरे हाथ से किताबें लेकर उलटी-पलटीं और ज़ोर से 'हूँ' की। आज भी मुझे लगता है कि उनके मन में मेरी पीएच.डी. के लिए विषय का निर्धारण हो चुका था। 'समाज भाषा विज्ञान' से संबंधित विषय का, जिस पर अब तक मात्र अंग्रेजी में ही पुस्तकें उपलब्ध थीं। पंडित जी पुस्तकें देखकर प्रसन्न हुए, अपने लिए भी ले आने को कहा। उनकी पुस्तक ' रीतिविज्ञान' भी वहाँ थी, नई-नई आई थी। पुस्तकें ही उनकी जीवन-रेखा थीं। घर पर भी उनके बिस्तर पर दो-चार किताबें पड़ी रहती थीं। जिन पुस्तकों पर वे काम कर रहे होते, उन्हें वे अपने सिरहाने गद्दे के नीचे दबा देते थे। चंडीगढ़ भी वे झोला भर के किताबें लाए थे। चंडीगढ़ ने मुझे उनका 'अंतरंग' जानने का अवसर दिया। अब मैं उनके भीतर का हाल जानने-बूझने लगा था। चंडीगढ़ में ही उन्हें मेरे और श्रीवास्तव जी के नाते का पता चला। उनकी भृकुटी थोड़ा तनी, एक मुस्कुराहट के बाद। श्रीवास्तव जी ने उन्हें बताया कि, दिलीप जी दो साल बीएचयू में रहे तो वहाँ भी उन्होंने किसी को यह पता नहीं लगने दिया था। यह सुन कर पंडित जी खूब जोर से मुस्कुराए।

हमारा संबंध और भी आत्मीय बना, हैदराबाद में। सन् 1975 का साल था। चंडीगढ़ वाला भाषाविज्ञान का 'बेसिक कोर्स' था, हैदराबाद वाला 'एडवांस'। पंडित जी इसमें भी आए थे। **'रीतिविज्ञान'** खूब चर्चा में थी। धूम मची हुई थी। हैदराबाद में ही प्रो. एस.के. वर्मा और डॉ. सुंदरम के साथ मेरी निकटता हुई थी। पंडित जी के ये दोनों प्रिय पात्र थे। वर्मा जी इनकी विद्वता पर रीझे हुए थे। खूब आदर करते थे। यहाँ पंडित जी ने मुझे अपना अनन्य शिष्य घोषित कर दिया था। मैं उनका ध्यान रखता। दीदी की रसोई का सामान जुटाता, पंडित जी के लिए ताज़े फल लाता। वे सादा पान खाते थे। 'शिवम' से दो-चार बीड़े ले आता। श्रीवास्तव जी आए तो दीदी ने उनसे मेरी बहुत तारीफ की। हैदराबाद में एस.के. वर्मा ने हमें 'सिस्टेमिक ग्रामर' पढ़ाया, श्रीवास्तव जी ने शैली विज्ञान और

पंडित जी ने रीतिविज्ञान। तीनों विद्वानों के दसियों व्याख्यानों ने भाषा प्रयोग के वैविध्य का पूरा वितान हमारे ऊपर तान दिया था। आज इनके 'नोट्स' की डायरियाँ उठाता हूँ तो इनकी आवाज़ें साफ-साफ सुनाई पड़ने लगती हैं।

मेरी पीएच.डी. की रूपरेखा पर पंडित जी ने बहुत परिश्रम किया था। बड़ी सूक्ष्म प्रश्नावली तैयार की गई थी। वे काशी में बसे विभिन्न प्रांतों के रहवासियों का 'हिंदी भाषा व्यवहार' देखना चाहते थे। 'लघु भारत' काशी की गली-गली में मुझे सर्वेक्षण कार्य करना था। संकलित सामग्री का विश्लेषण कार्य चल ही रहा था कि उनकी नियुक्ति के. एम. हिंदी संस्थान, आगरा के निदेशक पद पर हो गई। वे आगरा चले गए और मैं दिल्ली, श्रीवास्तव जी के पास। महीने में दो-तीन बार, दो-दो, चार-चार दिन के लिए आगरे जाता। पंडित जी 'गोकुल कुंज' में रहते थे। बंगलेनुमा घर था। सामने छोटी-सी बगिया भी थी। बाहर के बरामदे से लगा बायीं ओर एक बाहरी कमरा था- अतिथि कक्ष। मैं उसी में ठहरता। पलंग, मेज-कुर्सी, पंखा... सब व्यवस्था पक्की थी। पंडित जी रात के भोजन के बाद काम देखते थे। उनके यहाँ भोजन जल्दी कर लिया जाता था। मेरा भोजन उनका सेवक कमरे में ही ले आता। थोड़ी ही देर बाद वे स्वयं अपनी खड़ाऊँ खटकाते हुए आते। पास की कुर्सी पर कुछ देर बैठ कर पूछते कि-भोजन कैसा है? और क्या चाहिए? फिर चले जाते। यह शिष्टाचार वे हर बार दोनों टाइम निभाते। मैंने दीदी से अनुमति ले ली थी कि मैं सुबह का जलपान बाहर किया करूँगा। मुझे आगरे का लोकप्रिय नाश्ता - कचौड़ी, झोल (उबले आलू को मसल कर बनी पानीदार सब्जी) और गरमागरम जलेबी खूब रुचते थे। दुकान 'गोकुल कुंज' से थोड़ी ही दूर पर थी। वापस आता तो पंडित जी जरूर पूछते कि नाश्ता कैसा था? जलेबी कुरकुरी थी? कचौड़ी में हींग थी?... दीदी मज़ा लेतीं - अपने के त खायें के नाहीं त का पूछत रहेलीं (आपको तो खाना नहीं है तो क्यों पूछते रहते हैं?)। मेरा 'नाश्ता' इन दोनों के लिए हँसी-मजा का विषय बन जाता। यह देहाती हास-परिहास मुझे भिगो-भिगो देता था। पंडित जी और दीदी के ऐसे अनगिनत स्नेहिल प्रसंग मुझे याद आते रहते हैं, जो मुझे हँसाते और रुलाते साथ-साथ हैं। आगरे आने-जाने से दोनों का स्नेह-संबंध मुझ पर खुल कर उजागर हो गया था, अभी इसे और भी खुलना था। पंडित जी का रसभीना अंतर भी खुलना बाकी था। वासंती या फागुनी बयार उनकी संगिनी थे, तब भला वे शुष्क या तप्त हो भी कैसे सकते थे?

थीसिस तैयार हो गई। जमा हुई। वाइवा हुआ। अमर बहादुर सिंह और बाल गोविंद मिश्र आए थे। पंडित जी तो थे ही। उस दिन मुझे लगा कि उन्हें मेरा पूरा शोध-प्रबंध घुटा हुआ था। पूरे वाइवा के दरमियान वे मेरे तारणहार बने रहे। फिर वे आगरा वापस चले गए। समय का चक्र घूमता रहा। मैं फ्रांस गया, हैदराबाद आया और फिर आगरा के केंद्रीय हिंदी संस्थान में मेरी नियुक्ति हो गई। इन तीन-साढ़े तीन वर्षों में वे के.एम. में ही थे। मेरी छह-आठ महीने की बच्ची थी। हैदराबाद में था तभी हुई थी। मिलने गया तो बिटिया को देख कर पंडित जी और दीदी मोहा गए। दोनों बच्चों से बहुत प्यार करते थे। मैंने रिसर्च करते समय पंडित जी को अपनी नतिनी से लाड़ जताते देखा था। हम बार-बार जाते और दोनों बिटिया के साथ देर तक खेलते। दीदी हमारे साथ बाजार जातीं। सेनुर, टिकुली, चूड़ी और चटर-पटर सामान बड़े उत्साह से जाँच-परख कर, मोल-भाव करके खरीदतीं।

खूब खुश होतीं। हमें आसीसतीं। पंडित जी ने आगरे में एक बड़ी गोष्ठी की थी। रांगेय राघव पर। राजेंद्र यादव, कमलेश्वर, रामविलास शर्मा (जो पंडित जी से ठीक पहले के.एम. के निदेशक थे), रघुवंश और अज्ञेय आए थे। तीसरे और आखिरी दिन शाम को रांगेय राघव के उपन्यास 'कब तक पुकारूँ' का नाट्य-मंचन भी हुआ था।

श्रीवास्तव आगरे आते रहते थे। एक बार आए तो हम पंडित जी से मिलने गए। श्रीवास्तव जी ने एक पैकेट मुझे पकड़ा दिया। पंडित जी की बैठक में हम बैठे - फर्श पर बिछी दरी पर, वे भी वहीं बैठ गए। दीदी भी श्रीवास्तव जी की आवाज सुन कर आ गईं। भोजपुरी में बात होने लगी। तीनों मधुर भोजपुरी बोलते थे। मधुरता बरस रही थी। श्रीवास्तव जी ने पैकेट मुझसे लेकर दीदी को खड़े होकर दिया। दीदी ने झटपट उसे खोला - मैसूर सिल्क की साड़ी थी। श्रीवास्तव जी भारत भर में आते-जाते रहते थे। जहाँ जाते वहाँ से साड़ियाँ जरूर लाते। कभी उनके साथ जिज्जी भी जातीं। वैसे श्रीवास्तव जी को साड़ियों की अच्छी पहचान थी। पंडित जी भी तुरंत पहचान गए। बोले, मैसूर सिल्क। दीदी साड़ी पर लहालोट थीं। श्रीवास्तव अक्सर दीदी के लिए साड़ियाँ ले आते थे। बोले, बीना पहले आपके लिए साड़ी खरीदती हैं, अपने लिए बाद में। ऐसा कई बार हुआ है। बनारस में भी। तब जिज्जी भी साथ होती थीं। भेंट की गई साड़ी पर दोनों देर तक बात करतीं। साड़ी, दीदी की कमजोरी थी। मेरी पत्नी कोई अच्छी साड़ी पहन कर मिलने जातीं तो वे साड़ी को छू-छू कर देखतीं, बतियातीं। मैं चेन्नई में था तो मेरा केरल अकसर जाना होता था। मैं पंडित जी के लिए कॉटन की महीन मर्दानी धोती और दीदी के लिए साड़ी हमेशा ले जाता था। वे धोतियाँ पंडित जी को बहुत पसंद आती थीं। जब ये सब लेकर पहुँचता तो दीदी से कहते - तुम्हारा भाई हमारे लिए भेंट लाया है। कहाँ चले गए दोनों। लाड़-दुलार का ऐसा टटका स्वाद चखाने वाला मेरे साथ, आज कोई नहीं है। मेरे बेटे और उनके नाती के जन्म में दो दिन का फर्क था। हम जब भी बेटे-बेटी को लेकर जाते तो वे यह जरूर कहते कि तुम्हारा बेटवा बसुरात से दो दिन छोटा है। कोई विश्वास कर सकता है प्रकांड विद्वान पंडित जी के इस तरल आत्मीय भाव पर। यादों में यह स्नेह निर्झर झरता है तो झरझराने की आवाज़ नहीं होती, भीतर का सर्वस्व सनसनाने लगता है। और फिर कुछ भी अच्छा नहीं लगता।

वर्धा हिंदी विश्वविद्यालय स्थापित हो रहा था। अशोक वाजपेयी उसके प्रथम कुलपति बनाए गए थे। बहुत सी योजनाएँ बनानी थीं। एक के बाद एक लखनऊ, चेन्नई और वाराणसी में लंबी-लंबी कार्यशालाएँ की गईं। उन्होंने मुझे भी इस काम से लगातार जोड़े रखा। वे प्रमुख सलाहकार थे। चेन्नई की कई यादें मेरे साथ हैं। कार्यशाला 'सभा' के टी.नगर परिसर में ही की गई थी। लखनऊ में ही उन्होंने 'हिंदी का व्यावहारिक व्याकरण' लिखने की योजना बनाई थी। अब तक वे मुझे आधुनिक भाषाविज्ञान का ठीक-ठाक अध्येता मानने लगे थे। उन्होंने मुझे हिंदी की कुछ कहानियाँ और थोड़े-से उपन्यास चुन कर उनमें से व्याकरणिक और शैलीय संरचनाओं को छाँट कर उनकी व्याख्या करने का काम सौंपा था। मैंने काम शुरू कर दिया। पर वे बीच में ही चले गए। मैंने कुछ कहानियों का व्याकरणिक विश्लेषण कर भी लिया था। 'रोज़' कहानी (अज्ञेय) का विश्लेषण पंडित जी को दिखाया भी था। प्रसन्न और संतुष्ट थे। इस परियोजना के दौरान पंडित जी मुझसे खुल कर अकादमिक चर्चा

करने लगे थे। पहले भी करते थे, पर कम। उनके साथ हुई इन चर्चाओं ने मुझे क्या-क्या और कितना-कितना दिया है, कैसे लिखूँ।

मैं बनारस पहुँचा तो वे महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ के कुलपति थे। मैं एआईआईएस के हिंदी कार्यक्रम का निदेशक था। वे आते थे, अमेरिकी विद्यार्थियों को व्याख्यान देते थे। बाद में उनके साथ अंग्रेजी में गपियाते थे। पंडित जी की अंग्रेजी आदर्श थी - उच्चारण की वही शुद्धता जो उनके संस्कृत या हिंदी उच्चारण में पाई जाती थी। एक घटना याद आ गई है। सी.आई.ई.एफ.एल. में उनके चार व्याख्यान थे - पाणिनि पर। पहले दिन वर्मा जी ने उनका परिचय दिया। चाय के समय कई लोग व्यंग्यात्मक ढंग से सशंकित थे कि ये धोती-कुर्ता, चुटिया-चंदन वाले सज्जन अंग्रेजी में कैसे और क्या बोल पाएँगे। पहला व्याख्यान हुआ। पंडित जी की फर्राटेदार और तर्कसिद्ध अंग्रेजी सुन कर सब सकते में आ गए। दूसरे दिन से श्रोताओं की भीड़ बढ़ने लगी। उनकी पुस्तक **'द डिस्क्रिप्टिव टेकनीक ऑफ पाणिनि'** (1966) तो अंग्रेजी में ही है। उनके द्वारा संपादित तीन पुस्तकों से मुझे लगता है हिंदी जगत बहुत कम परिचित है - **इंडियन पोएटिक ट्रेडीशन** (1983), **मॉडर्न हिंदी पोएट्री एंड एंथोलजी** (1986) तथा **क्रिएटिविटी एंड एनवायरमेंट**। वे जितने प्रबुद्ध थे, उससे कहीं अधिक सहज और सलोने थे। दीदी उनकी पूरक थीं। पंडित जी जिस भारतीय जड़ के व्याख्याता थे, दीदी उसकी पोषक थीं - नख से शिख तक लोक-रंग में रंगी हुई।

विधाता ने यह सब मेट कर धर दिया। पहले दीदी गई। पीछे-पीछे पंडित जी भी चले गए। अकस्मात। कार दुर्घटना में। पंडित जी को याद नहीं करना पड़ता। श्रीवास्तव, वर्मा जी, सहाय साहब, चतुर्वेदी जी... कोई भी मेरे स्मृति पटल पर छाता है तो पंडित जी भी चुपचाप आकर बादल के एक नन्हे-से टुकड़े की तरह विचरने लगते हैं। उनका स्मरण कभी भी अवसाद में नहीं डुबोता। 'तमाल-पत्र' उनके निबंधों का विषय बनता रहा है। उनका स्मरण मेरे लिए 'तमाल-पत्र' के द्रव की गंध की भाँति ही मादक होता है। तमाल-पत्र पर पड़ी बूंदों की 'ढुरकन' की तरह - सौंदर्य आपूरित। जो ढुरक कर श्यामल पत्तों का प्रक्षालन कर देती हैं कि जब सूर्य की किरणें पड़ती हैं तो 'श्यामल' भी 'स्वर्णिम' हो जाता है। सन्नाटों को अटूट वे कभी होने ही नहीं देते।

संस्कृत में कई शब्द अव्युत्पन्न हैं। उन्में किसी प्रकृति और प्रत्यय की कल्पना करने की आवश्यकता नहीं है। वे अपने विशिष्ट अर्थ में रूढ़ हैं। रूढ़ि अभिधा का प्रथम प्रकार है। यौगिक शब्दों में भी शब्द के अवयव रूढ़ होते हैं। अतएव शास्त्रकारों ने कहा है कि समुदायशक्ति रूढ़ि है तो अवयवशक्ति योग है।

(विद्यानिवास मिश्र, भारतीय भाषाशास्त्रीय चिंतन)

आलेख

सामान्य जन का अनूठा रचनाकार : रांगेय राघव

- सन्दीप तोमर

डी 2/1, जीवन पार्क, उत्तम नगर, नई दिल्ली-110059

रांगेय राघव हिंदी साहित्य के विलक्षण कथाकार, लेखक और कवि माने जाते हैं। वे मूल रूप से तमिल भाषी थे, लेकिन उन्होंने हिंदी में बहुतायत लिखा।उनका जन्म उत्तर प्रदेश के आगरा जिले में 17 जनवरी, 1923 को हुआ था। ऐसा माना जाता है कि रांगेय राघव के पूर्वज लगभग 300 साल पहले आकर जयपुर और भरतपुर के गाँवों में रहने लगे थे। उनकी शिक्षा-दीक्षा आगरा में हुई। उन्होंने 1944 में 'सेंट जॉन्स कॉलेज' से स्नातकोत्तर उपाधि और 1949 में 'आगरा विश्वविद्यालय' से गुरु गोरखनाथ पर शोध करके पीएचडी की उपाधि हासिल की थी। भले ही वे बहुत कम उम्र देख पाए (केवल 39 साल की उम्र में रांगेय राघव का निधन कैंसर के कारण 12 सितंबर, 1962 में हो गया), लेकिन इतना अधिक लिखा कि कालजयी हो गए। राहुल सांकृत्यायन के बाद सबसे ज्यादा लिखने वाले साहित्यकार कहें तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। उन्होंने संस्कृत रचनाओं का हिंदी में अनुवाद किया, साथ ही जर्मन और फ्रांसीसी के अनेक साहित्यकारों की रचनाओं का भी हिंदी में अनुवाद किया। उनके द्वारा शेक्सपीयर की रचनाओं का हिंदी अनुवाद मूल रचना सरीखा होने के कारण उन्हें 'हिंदी के शेक्सपीयर' की संज्ञा दी गई। शेक्सपीयर के दस नाटकों का उन्होंने हिंदी में अनुवाद किया था। भारतीय भाषाओं में अनूदित कृतियाँ - जैसा तुम चाहो, हैमलेट, वेनिस का सौदागर, ऑथेलो, निष्फल प्रेम, परिवर्तन, तिल का ताड़, तूफान, मैकबेथ, जूलियस सीजर, बारहवीं रात उन्हीं की देन हैं। इन कृतियों को पढ़कर अंदाजा लगाना मुश्किल है की ये वास्तव में किसी अन्य भाषा कि अनूदित कृतियाँ हैं। अनुवाद का यह कौशल उन्हें एक विशिष्ट दर्जा प्रदान करता है।

रांगेय राघव अंग्रेजी, हिंदी, ब्रज और संस्कृत के प्रकांड विद्वान थे। साथ ही दक्षिण भारतीय भाषाओं- तमिल और तेलुगु का भी उन्हें अच्छा-खासा ज्ञान था। इतनी अधिक भाषाओं को जाननेवाले साहित्यकार विरले ही मिलते हैं। साहित्य के अतिरिक्त वे चित्रकला, संगीत और पुरातत्त्व में विशेष रुचि रखते थे। वे साहित्य की प्रायः सभी विधाओं में सिद्धहस्त रहे। उन्होंने मात्र 39 वर्ष की आयु में कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, रिपोर्ताज के अतिरिक्त आलोचना, सभ्यता और संस्कृति पर शोध व व्याख्या के क्षेत्रों को 150 से भी अधिक पुस्तकों से भारतीय साहित्य को समृद्ध किया। वे अपनी अद्‌भुत प्रतिभा, असाधारण ज्ञान और लेखन-क्षमता के लिए सर्वमान्य अद्वितीय लेखक माने जाते रहे। उनके बारे में यह कहा जाता था कि "जितने समय में कोई एक किताब पढ़ता है, उतने में वे एक किताब लिख देते हैं।"

रांगेय राघव नाम के पीछे भी एक दिलचस्प कहानी है। उन्होंने अपने पिता रंगाचार्य के नाम से रांगेय लिया और अपने स्वयं के नाम राघवाचार्य से राघव शब्द लेकर अपना नाम 'रांगेय राघव' रखा। उनके साहित्य में जो सादगी परिलक्षित होती है वैसे ही उनका जीवन दिखाई पड़ता है। वे सीधा-सादा और सादगीपूर्ण जीवन व्यतीत करते थे।

एक बार रामदरश मिश्र से साक्षात्कार किया तो उनका मंतव्य था कि लेखक को किसी वाद या विचारधारा से नहीं बंधना चाहिए। लेखक सबका होता है। लेखक न संघी होता है, न ही कांग्रेसी या कोई अन्य।

लेखक की स्वयं की दृष्टि होती है। लेखक का काम होता है गलत का विरोध करना। आप स्वयं को किसी एक विचारधारा में नहीं बाँध सकते। लेखक की नजर में सब रहता है। उसकी दृष्टि में कुछ छिपा नहीं होता। उसका फर्ज होता है कि वह तटस्थ होकर लिखे। रांगेय राघव सामान्य जन के ऐसे ही रचनाकार थे जो समूचे जीवन काल में किसी वाद से नहीं बँधे। उन्होंने अपने ऊपर मढ़े जा रहे मार्क्सवाद, प्रगतिवाद और यथार्थवाद का खुलकर विरोध किया। उन्होंने स्पष्ट कहा था- "मैंने न तो प्रयोगवाद और प्रगतिवाद का आश्रय लिया और न ही प्रगतिवाद के चोले में अपने को यांत्रिक बनाया।" कहा जा सकता है कि वे मूलतः मानवीय सरोकारों के लेखक हैं।

रांगेय राघव के रचनाकर्म पर दृष्टि डालें तो पता चलता है कि उन्होंने अपने अध्ययन से, अपने दौर के इतिहास से, मानवीय जीवन, मनुष्य के दुःख-दर्द-पीड़ा और उस चेतना, जिसके भरोसे वह संघर्ष करता है, अंधकार से जूझता है, उसे ही सत्य माना और उसी को आधार बनाकर साहित्य की रचना की। उन्हें अपने युग से आगे का लेखक माना जाता था। उनके लेखन की प्रगतिशीलता के चलते उन्हें प्रेमचंद के बाद हिंदी साहित्य का युग प्रवर्तक लेखक मान लिया गया।

उन्हें उनके रचनाकर्म के लिए कई पुरस्कार-सम्मान मिले। उन्हें 1947 में हिंदुस्तानी अकादमी पुरस्कार, 1954 में डालमिया पुरस्कार, 1957 और 1959 में उत्तर प्रदेश शासन पुरस्कार, 1961 में राजस्थान साहित्य अकादमी पुरस्कार और 1966 में मरणोपरांत महात्मा गांधी पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

रांगेय राघव को ऐतिहासिक उपन्यास लिखने में महारथ हासिल थी। उन्होंने न केवल ऐतिहासिक उपन्यास लिखे, बल्कि ऐसे ऐतिहासिक उपन्यास लिखे जिनके चरित्र महिलाओं से जुड़े थे। रांगेय राघव ने इन ऐतिहासिक या पौराणिक पात्रों को एक स्त्री की नजरिए से देखा। उन्होंने 'गदल' कहानी लिखी, जो आधुनिक स्त्री-विमर्श की कसौटी पर खरी उतरती है। राघव के उपन्यासों के नाम उनके पात्रों से जुड़ी महिलाओं के नाम पर थे। जैसे 'भारती का सपूत' जो भारतेंदु हरिश्चंद्र की जीवनी पर आधारित है। 'मेरी भव बाधा हरो' कवि बिहारी के जीवन पर आधारित है, 'लखिमा की आँखें' विद्यापति के जीवन पर आधारित है। तुलसी के जीवन पर आधारित है 'रत्ना की बात।' 'लोई का ताना' कबीर के जीवन पर आधारित है। गोरखनाथ के जीवन पर आधारित कृति है 'धूनी का धुआँ।' 'यशोधरा जीत गई' गौतम बुद्ध पर लिखा गया है। 'देवकी का बेटा' कृष्ण के जीवन पर आधारित है। उन्होंने 'कब तक पुकारूँ' और 'धरती मेरा घर' जैसे आंचलिक उपन्यास भी लिखे। 13 वर्ष की आयु में लेखन आरंभ करने वाले राघव 23-24 वर्ष की आयु में ही अभूतपूर्व चर्चा का विषय बन गए। सन 1942 में बंगाल के अकाल पर लिखी उनकी रिपोर्ताज 'तूफानों के बीच' काफी चर्चित रही। रांगेय राघव ने कुल मिलाकर डेढ़ सौ से अधिक पुस्तकें लिखीं।

उनके बहुआयामी रचना संसार में (कहानी संग्रह) देवदासी, समुद्र के फेन, जीवन के दाने, इंसान पैदा हुआ, पाँच गधे, साम्राज्य का वैभव, अधूरी मूरत, ऐयाश मुर्दे, एक छोड़ एक, धर्म संकट; (उपन्यास) मुर्दों का टीला, हुजूर, रत्ना की बात, राय और पर्वत, भारती का सपूत, विषाद मठ, सीधा-सादा रास्ता, लखिमा की आँखें, प्रतिदान, काका, अंधेरे के जुगनू, लोई का ताना, उबाल, कब तक पुकारूँ, पराया, आँधी की नावें, धरती मेरा घर, अंधेरे की भूख, छोटी-सी बात, बोलते खंडहर, पक्षी और आकाश, बौने और घायल फूल, राह न रुकी, जब आवेगी काली घटा, पथ का पाप, कल्पना, प्रोफेसर, दायरे, मेरी भाव बाधा हरो, पतझड़, धूनी का धुआँ, यशोधरा जीत गई, आख़िरी आवाज़, देवकी का बेटा खास हैं। ☆

आलेख

रांगेय राघव : हिंदी साहित्य का खरा सोना

- कुसुम लता जोशी

73/74, मुणिनागण्पा लेआउट, विद्यासागर मेन रोड, सरकारी स्कूल सारायिपालय के पास, एस आर के नगर, बेंगलूरु-560077

रांगेय राघव किसी परिचय के मोहताज नहीं। मेरे प्रिय लेखकों की फेहरिस्त में जो लेखक आते हैं उनमें रांगेय राघव अग्रणी है। यह रांगेय राघव का जन्म शताब्दी वर्ष है। रांगेय राघव की रचनाओं को पढ़ते हुए पाठक उनकी रचनाओं में इस तरह डूब जाता है कि समय का खयाल ही नहीं रहता। कहने का आशय है कि उनकी रचनाएँ पाठक को बाँधकर रखती हैं।

रांगेय राघव के पूर्वज दक्षिणात्य थे तथा तिरुपति बालाजी देवस्थानम से संबंधित थे। हालांकि, कुछ पीढ़ियों पहले उनके पूर्वज भरतपुर के वैर, ब्रज क्षेत्र में आकर बस गए थे जहाँ कि वे राजपुरोहित के रूप में कार्यरत रहे। राघव जी की माता कनकवल्ली कन्नड़ भाषी और पिता रंगाचार्य तमिल ब्राह्मण थे। इसी पारिवारिक पृष्ठभूमि के कारण उन्हें संस्कृत भाषा का अच्छा ज्ञान प्राप्त था। रांगेय राघव का जन्म स्थान आगरा था जो कि हिंदी और ब्रज भाषा का गढ़ है। वैर क्षेत्र भी उत्तर प्रदेश और राजस्थान का सीमांत क्षेत्र होने से रांगेय राघव को हिंदी, ब्रज भाषा और राजस्थानी भाषा को पढ़ने, सुनने और समझने का अच्छा अवसर मिला। इसी का परिणाम है कि उनकी कई कहानियाँ इसी क्षेत्र की पृष्ठभूमि पर आधारित हैं और यहाँ के लोक जीवन का बारीक विश्लेषण स्वाभाविक रूप से उभर आया है जो कहानी को एक मजबूती प्रदान कर स्थान विशेष से जोड़ देता है।

साहित्य की वह कौन सी विधा है जिसमें रांगेय राघव ने लेखनी न चलाई हो ! निबंध, नाटक, रिपोर्ताज, कहानियाँ, कविताएँ, उपन्यास, आलोचना आदि सभी विधाओं में उन्होंने लिखा है। तेरह वर्ष की अल्पायु से ही वे लिखने लगे थे और फिर हर क्षेत्र में लिखते ही रहे। उन्होंने 100 से भी अधिक कहानियाँ लिखी, जिनमें कहीं सामाजिक जागरूकता और चेतना के दर्शन होते हैं तो कहीं राजनैतिक, आर्थिक व सामाजिक शोषण का चित्रण। हालांकि उनकी कहानियाँ जनमानस के बीच की ही थीं किंतु भाषा प्रवाह, जटिलता रहित लेखन और गठे हुए कथा सौष्ठव के कारण उनकी कहानियाँ पाठक को जकड़ कर रख लेती हैं और कहानी खत्म होने के बाद भी दिलो-दिमाग में कुछ समय तक प्रभाव बनाए रखती हैं। भाषा का सरल सहज प्रवाह, कहीं-कहीं चित्रात्मक शैली और कभी संवाद तो कहीं प्रकृति का स्वाभाविक वर्णन के कारण, कई बार तो गद्य में ही उनके कवि हृदय का भी परिचय होने लगता है।

'घरौंदा' रांगेय राघव के प्रारंभिक उपन्यासों में से है जिसमें एक निर्धन परिवार का गाँव का भोला-भाला लड़का विश्वविद्यालय में पढ़ने के लिए शहर आ जाता है। शहरी जीवन का संघर्ष, छात्रावास, महाविद्यालय की शिक्षा आदि विविधताओं के साथ ही अंग्रेजी साम्राज्य, द्वितीय विश्व युद्ध के साथ ही साथ मिशनरियों द्वारा धर्म परिवर्तन कराने की समस्या को भी दर्शाया गया है। यह लेखक के प्रारंभिक उपन्यासों में से एक है इसीलिए कहीं-

कहीं कथा में उतनी परिपक्वता नहीं दिखती। कहीं लेखक जीवन के साधारण से अवसर पर दार्शनिक होकर विचार व्यक्त करने लगते हैं तो कहीं पर पढ़े-लिखे नए जमाने के युवाओं में पुरानी रूढ़ियों को तोड़ आगे बढ़ने की कसक भी पैदा करती हैं। कई जगह पर कॉलेज के कुछ ऐसे दृश्य बन पड़े हैं जो आज के युवा वर्ग को भी अपने से जुड़े हुए लगते हैं। इसीलिए कुल मिलाकर 'घरौंदा' एक रोचक उपन्यास बन गया जो आज भी सामायिक है।

पाठक के रूप में रांगेय राघव का सबसे पहले मैंने 'कब तक पुकारूँ' नामक उपन्यास पढ़ा था। इस कालजयी रचना वैर क्षेत्र के आदिवासी करनट समुदाय पर केंद्रित है। इसी में कंजर, लुहार आदि तबके का भी थोड़ा परिचय मिलता है। भूमिका में ही लेखक रांगेय राघव ने करनट समुदाय के बारे में जानकारी प्रस्तुत की है जिससे इस समुदाय की रीतियों से अनभिज्ञ पाठक इस समाज की स्त्रियों के खुले यौन संबंधों, वेश्यावृत्ति आदि की परंपरा देखकर भौंकचक्का न रह जाए। कहानी का नायक सुखराम और उसके पूर्वज नट समाज में रहने के बावजूद ठाकुर होने के दोहरे चरित्र को जीते हुए, मान-अपमान और थोथे अभिमान से जूझते हुए दिखते हैं। 'कब तक पुकारूँ' उपन्यास पर बाद में एक टेलीविजन शृंखला भी बनी, जिसे काफ़ी लोकप्रियता मिली। 'गदल' भी इनकी आंचलिक कहानी है जिसमें समाज के निचले हिस्से की जीवन शैली, समस्याएँ, परंपराएँ आदि दिखाई देती हैं। 'गदल' स्त्री का स्वैच्छिक जीवन तो दिखाती है किंतु साथ ही परिवार, परंपरा, प्रेम के लिए समर्पण और आत्मोत्सर्ग भी दिखाती है। कहानी भी 'कब तक पुकारूँ' उपन्यास का ही एक चरित्र दिखती है। नायिका गदल लुहार समाज के कम आयु के युवक के घर बैठ जाती है। 'मुर्दों का टीला' उनका दूसरा बहुचर्चित उपन्यास रहा, जो मोहनजोदड़ो सभ्यता और संस्कृति पर आधारित है। 1942 में अकालग्रस्त बंगाल की यात्रा पर आधारित रिपोर्ताज 'तूफानों के बीच' भी लोगों द्वारा बहुत पसंद किया गया है।

रांगेय राघव के लेखन की एक विशेषता यह भी है कि उन्होंने स्त्री हृदय को केंद्र में रख कर लेखन किया है। इसीलिए उनकी कहानियाँ नायिका के हृदय में झाँकती प्रतीत होती हैं। वे सीधे कृष्ण न कह कर 'देवकी का बेटा' कहते हैं। यशोधरा के त्याग को प्रकट कर उसे बुद्ध के सामने विजयी होते दिखाते हैं। यहाँ तक कि 'कब तक पुकारूँ' कहानी के स्त्री पात्रों के चरित्र दिखाने से पहले ही स्पष्ट करते हैं कि वेश्यावृत्ति या परपुरुष संबंध वहाँ घिनौने कृत्य न होकर, उस समाज में मान्य परंपरा और कभी-कभी मजबूरी भी हैं।

रांगेय राघव के अन्य अनेक उपन्यास भी हैं जो जीवनी आधारित हैं। भारतेंदु हरिश्चंद्र की जीवनी पर आधारित 'भारती का सपूत', कृष्ण जीवन पर 'देवकी का बेटा', भगवान बुद्ध के जीवन से संबंधित 'यशोधरा जीत गई', कवि बिहारी पर केंद्रित 'मेरी भव बाधा हरो' आदि उल्लेखनीय हैं। इन्होंने कई ललित निबंध भी लिखे, जो काफी सराहे गए।

'पिघलते पत्थर', 'श्यामला', 'अजेय खंडहर', 'मेधावी', 'राह के दीपक', 'पांचाली' और 'रूपछाया' रांगेय राघव कविता के संग्रह हैं। 'श्रमिक' कविता में जहाँ खेतीहर श्रमिक की मधुर भावना को 'हम शस्य उगाने आए थे, छाया करते नीले-नीले झुक झूम-झूम हम चूम उठे, पृथ्वी के गालों को गीले'-कह कर उकेरा है तो 'डायन सरकार' कविता में परतंत्रता से खीझते हुए युवाकवि हृदय ने 'परदेशी का राज न हो, बस यही एक हुंकार रहे। फ़िर उठा तलवार, कहकर ब्रिटिश सरकार के प्रति विद्रोह दर्शाया है। वहीं जिंदगी की जंग से थके हुए मन की पीड़ा व्यक्त

करते हुए 'नास्तिक' कविता में कवि सत्ता से ही प्रश्न करने लगता है- 'ओ ज्योतिर्मय ! क्यों फ़ेंका है, मुझको इस संसार में' तो वहीं दूसरी तरफ़ मैं चिर जीवन का प्रतीक हूँ ! कहकर सकारात्मकता का उद्‌घोष भी करते दिखते हैं। इस प्रकार उनकी कविताओं में जीवन के विविध यथार्थ रंग तो मिलते हैं, साथ ही सकारात्मकता भी दिखती है, जो कवि के जीवन-दर्शन को प्रकट करती है। वे जीवन के संघर्ष और पीड़ा को जिजीविषा और उत्साह के साथ भरते हुए दिखते हैं। इससे प्रकट होता है कि वे समाज को पीड़ा व निराशा के गर्त से उभारकर आगे बढ़ने को उत्साहित करना चाहते थे। उनकी कविता में मार्क्सवादी प्रभाव तो है किंतु रूढ़िवादिता से हटकर। उन्होंने नवचेतना जाग्रत करने की कोशिश की। इसी कारण उनका साहित्य मानव समाज के लिए कल्याणकारी हो सका।

रांगेय राघव की प्रसिद्धि और लोकप्रियता के कारण ही उनके द्वारा लिखी कृतियों का अनेक विदेशी भाषाओं में भी अनुवाद हुआ। जैसा कि तत्कालीन समय में विदेशी रचनाओं का हिंदी में बड़ी संख्या में अनुवाद हो रहा था, रांगेय राघव ने भी ओथेलो, जूलियस सीजर, तिल का ताड़, मैकबैथ आदि अनेक रचनाओं का हिंदी अनुवाद किया।

माना जाता है कि अपने अनवरत लेखन के परिणामस्वरूप ही वे हिंदी साहित्य के ऐसे लेखक के रूप में सामने आए, जिन्हें पूरी तरह से मसिजीवी कहा गया। अर्थात वे पूर्ण रूप से लेखन द्वारा जीवन यापन कर पाने में सक्षम हो सके। उनसे पहले चाहें प्रेमचंद हो या निराला, महादेवी हों या हरिवंश राय बच्चन आजीविका के लिए उन्हें अन्य जगह तीन पाँच करनी ही पड़ी थीं।

रांगेय राघव की रचनाओं में समाज के वास्तविक चरित्र का चित्रण किया गया है। अनावश्यक आदर्शवादिता से हट कर समाज का असली चेहरा अपनी रचनाओं में लेखक ने प्रकट कर दिया है। कहानी की पृष्ठभूमि चाहें 'गदल', 'नई जिंदगी के लिए' की तरह उत्तर भारतीय हो या 'देवदासी' और 'प्रवासी' की तरह दक्षिण भारतीय, अथवा अन्य, प्रेमचंद की तरह के अनावश्यक आदर्शवाद उन्होंने अपने पात्रों पर नहीं थोपे। समाज की घृणित, दूषित और रूढ़िवादी परंपराओं, भ्रष्टाचार, स्त्रियों के प्रति अत्याचार और पुरुष प्रधान विचारधारा (नई जिंदगी के लिए में बेटे के जन्म की कामना) को सामने लाए और उसकी निरर्थकता को उजागर किया। उनकी कहानियों को पढ़कर लगता है कि मानो अपनी रचनाओं के माध्यम से वे समाज को उसका असली मुखौटा दिखा कर परिवर्तन लाना चाहते थे और यही कारण है कि आज भी उनकी रचनाएँ उतनी ही सामायिक लगती हैं। शायद इसी कारण उन्हें हिंदी साहित्य का शेक्सपीयर भी कहा जाता है।

रांगेय राघव बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। उनको न केवल हिंदी भाषा पर पूर्ण अधिकार था अपितु वे अंग्रेजी, संस्कृत, राजस्थानी, तमिल, तेलुगु आदि के भी अच्छे जानकार थे। वे संगीत और गायन का भी ज्ञान रखते थे और अच्छे गायक भी थे। उनकी नज्मों में शामिल उर्दू के अल्फाजों से उनके उर्दू भाषा के ज्ञान का पता चलता है। उनकी रचनाओं में दिखने वाली मौलिकता, भाषा-शैली और विभिन्न विषयों पर लिख पाने की क्षमता रांगेय राघव को खरा सोना साबित करती हैं। ऐसे बहुमुखी प्रतिभा के धनी व्यक्ति की शायद ईश्वर को भी जरूरत थी। इसीलिए लगभग उन्तालीस वर्ष (1923 से 1962 तक) की अल्पायु में ही वे परम धाम सिधार गए। फिर भी अपनी रचनाओं के माध्यम से हिंदी साहित्य का यह सूर्य सदैव दैदीप्यमान रहेगा। ☆

आलेख

'कब तक पुकारूँ' में नट-जीवन का मुकम्मल यथार्थ

- किरण कुमारी

असिस्टेंट प्रोफेसर, स्नातकोत्तर हिंदी विभा, डोरण्डा महाविद्यालय, राँची

हिंदीतर भाषी डॉ. रांगेय राघव राहुल सांकृत्यायन की कोटि के सर्वतोमुखी प्रतिभा संपन्न लेखक थे। रांगेय राघव अध्येता और चिंतक तो थे ही, आधुनिक राजनीतिक चेतना युक्त व्यक्ति भी थे। बहुत दूर तक वे मार्क्सवादी थे, लेकिन मार्क्सवाद का अंधानुकरण नहीं करते थे। अपने विवेक से निर्णय लेते हुए, भारतीय मनुष्य के इतिहास और संस्कार का ध्यान रखते हुए, उसके भविष्य के संबंध में उन्होंने निर्णय लिए थे। मानव-जीवन में उनकी गहरी आस्था है। सत्यान्वेषण, उनके जीवन का लक्ष्य रहा है। उनका व्यक्तित्व स्वतंत्र चिंतन और मौलिक मेधा से निर्मित था। वे किसी 'वाद' के प्रति समर्पित साहित्यकार नहीं थे।

रांगेय राघव का उपन्यास 'कब तक पुकारूँ' हिंदी के श्रेष्ठतम उपन्यासों में से एक है। राजस्थान और ब्रज-प्रदेश की सीमा पर बसे 'वैर' नामक ग्राम और उसके इर्द-गिर्द खानाबदोश जीवन-यापन करने वाले जरायमपेशा करनटों की बस्ती है। इस जरायमपेशा करनटों की संस्कृति, रीति-रिवाज, विश्वास, अंधविश्वास, नैतिकता तथा अनैतिकता का सजीव चित्रण करके लेखक ने एक नई दुनिया का आविष्कार किया है। 'कब तक पुकारूँ' का विशाल भवन इस जरायमपेशा करनटों की जीवनगाथा है।

सृजन का शाश्वत उद्देश्य एक ही है और वह है खूबियों और खामियों के साथ समकालीन जीवन की समग्र प्रस्तुति। रांगेय राघव का बहुचर्चित उपन्यास 'कब तक पुकारूँ' नटों के जीवन के वास्तविक एवं मुकम्मल यथार्थ को व्यवस्थित रूप से उजागर करता है। इस उपन्यास का महत्त्व यह है कि इसके बिना सुविधा-विहीन करनटों के जीवन की चिंताओं, चुनौतियों, संघर्षों, सपनों और इन सपनों को साकार करने की संभावित दिशाओं की समझ का विकास नामुमकिन है।

प्रेमचंद ने 'गोदान' में, फणीश्वरनाथ 'रेणु' ने 'परती परिकथा' में तथा नागार्जुन ने 'बलचनमा' में उन निम्न वर्ग के किसानों का चित्रण किया है जो जन्म से मृत्यु तक खेतों में काम करते हैं, अनाज उपजाते हैं किंतु महाजनों और जमींदारों की शोषण-वृत्ति के कारण भूखे ही जीवन जीते हैं और बिना कफन ओढ़े ही संसार से विदा लेते हैं। किंतु रांगेय राघव ने 'कब तक पुकारूँ' में समाज के उस वर्ग को चुना है, जिसका अपना कोई खेत नहीं, व्यवसाय नहीं, व्यवस्थित घर नहीं; जो चोरी करते, शहद इकट्ठा करके बेचते, खेल दिखाते और जिनकी स्त्रियाँ ब्राह्मणों, ठाकुरों एवं पुलिस वालों से यौन संबंध स्थापित करके कुछ कमा लेती हैं। यही उनके जीवन-यापन का मुख्य साधन है। यह क्रम कई पीढ़ियों से यथावत है। उपेक्षित, शोषित, पीड़ित नटों की दयनीय दशा पर न तो समाज की दृष्टि पड़ी है, न तो सरकार की। अपनी अतृप्त यौन-वासना की तृप्ति करके भी नटनियों को इकन्नी, दुअन्नी या

गुड़ की भेली पर ही टरका दिया जाता है। स्वतंत्र भारत में जरायमपेशा नटों की खूब प्रगति हुई है। अब यह वर्ग गाँवों या जंगलों में नहीं बड़े-बड़े शहरों में भी बस गया है। कोलकाता, मुम्बई और दिल्ली में बहुसंख्या में इन्हें देखा जा सकता है। इस चिर उपेक्षित समाज की पीड़ा से रू-ब-रू कराना और इनकी समस्याओं के समाधान का मार्ग तलाशना ही इस उपन्यास का उद्देश्य है।

इस उपन्यास की प्रमुख समस्याओं में यौन समस्या, आर्थिक विषमताएँ, सामाजिक यातनाएँ, ब्राह्मण, ठाकुर आदि कुलीन कहे जाने वाले लोगों के अकुलीन कार्यों का विश्लेषण, पुलिस का दमन और अत्याचार आदि हैं। डॉ. इन्द्रनाथ मदान लिखते हैं- "भारत की स्वाधीनता के बाद साहित्यकार की दृष्टि का इन पर पड़ना स्वाभाविक ही कहा जा सकता है। होरी के जीवन पर लेखक की दृष्टि गांधीवादी युग में पड़ी थी और खानाबदोशों पर स्वाधीनता के बाद पड़ी है। रांगेय राघव ने एक समाजशास्त्री के नाते इन लोगों के जीवन का न केवल एक सूक्ष्म निरीक्षण किया है, बल्कि उपन्यासकार के नाते इनसे एक आत्मीय संबंध भी स्थापित किया है। (डॉ. इन्द्रनाथ मदान, आज का हिंदी उपन्यास, पृ. 277)

लेखक की मान्यता है कि ईसा से पहले जैसे यूनान में 'पेगन' जातियाँ थीं, जो असभ्य मानी जाती थीं उनकी औरतों में 'नैतिकता' नहीं होती। वे 'सेक्स' में आजाद होती थीं, ये जातियाँ सभ्यता से दूर थीं। लेखक ने इनकी नैतिकता को समाज का आदर्श बनाकर प्रस्तुत नहीं किया है, उसने यह बताने का प्रयत्न किया है कि सारा खानाबदोश समाज उत्पीड़ित, शोषित तथा दलित है। न इनके ये सामाजिक नियम शाश्वत हैं न हमारी नैतिकता के बंधन ही शाश्वत हैं। (डॉ. लाल साहब सिंह, डॉ. रांगेय राघव और उनके उपन्यास, पृ.107)

'कब तक पुकारूँ' की प्यारी और कजरी ने इसी परिवेश में जन्म लिया था। इन्हीं दोनों ने उस समाज की नारी जाति का प्रतिनिधित्व किया। नैतिकता और अनैतिकता का इन्हें ज्ञान नहीं। इन्हें ज्ञान है केवल भूख का। इन नारियों को लेखक ने सभ्यता के संसर्गजन्य दोष से मुक्त रखा है। ये तन से अशुद्ध होने पर भी मन से शुद्ध थीं। इनका जीवन लाईब्रेरी की खुली हुई पुस्तक के सदृश है, उसे कोई भी पढ़ सकता है। चरित्र में कोई उलझाव नहीं, दुराव नहीं। उनकी मान्यता है कि "नाता जोड़ना और बात है, मन की होके रहना और बात है। (रांगेय राघव, कब तक पुकारूँ, पृ.74)। इस प्रकार इस असभ्य समाज में 'तन' महत्त्वपूर्ण नहीं, मन महत्त्वपूर्ण है। कजरी कहती है- "हमारे पास जमीन जैजात नहीं कि डर जाएँ। जान है तो जहान है। यहाँ हैं तो यहाँ हैं, नहीं तो कहीं और हैं। धरती अपनी नहीं, घर नहीं, पर नींद अपनी है, समझा! उसे हमसे कोई नहीं छीन सकता। (वही, पृ.165)। परिस्थितियाँ जितनी भी कठिन हों, ये स्त्रियाँ निर्भीक हैं, दुःसाहसी हैं, अडिग हैं। जंगल में इनके रात गुजारने का वर्णन रांगेय राघव इस प्रकार करते हैं-"वे लोग लेट गए। पत्थरों पर, नंगे आकाश के नीचे। इन्सानों की देही ने चैन पाया। इन्हीं पत्थरों की सख्ती और आकाश की नीली पलक के विरुद्ध विद्रोह करके मनुष्य ने शताब्दियों में घर बनाया, पलंग बनाया। परंतु उसके पास कुछ भी नहीं। वे केवल मनुष्य हैं। उनके पास ज्ञान नहीं, किंतु स्नेह है, और वही जीवन का शाश्वत संबल है। वे मर जाते हैं, फिर जी उठते हैं, उनके ऐसे भावना के सत्य अमर हैं।

बियाबान जंगल है जिसमें तरह-तरह के पशु घूमते हैं। खूंखार और खतरनाक और उनके पैरों पर पगडंडियों की हल्की बेड़ियाँ कहीं कहीं कसती हैं, जिससे कतराकर के और गहन हरियाली में चले जाते हैं, क्योंकि चलने के निशान छोड़ना सिर्फ आदमी के पाँव जानते हैं और वह जंगल सूनी-सूनी सी साँस लेता है, फिर अपनी झाड़ियों में इतराता है। सूना-सा पहाड़ ऊपर तक चला गया है। दूर से नीला दिखता है, पास से काला। इनकी शृंखला अरावली तक ऐसे ही चली जाती है। इन रास्तों को आदमी कम रुंदता है, जानवर अधिक। (वही, पृ.252)

विश्वनाथ प्रसाद तिवारी अपनी पुस्तक में लिखते हैं- "वस्तुतः भारतीय नारी के लिए जिस यौन-पवित्रता को आवश्यक समझा जाता है, वह पाश्चात्य नारी के लिए बहुत आवश्यक नहीं। स्वयं भारत में निम्न जातियों या जन-जातियों में इसे उतना आवश्यक नहीं समझा जाता। 'कब तक पुकारूँ' नामक उपन्यास में रांगेय राघव ने जरायम पेशा कही जाने वाली खानाबदोश जाति का जीवन चित्रित किया है। (विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, नए साहित्य का तर्कशास्त्र, पृ.77)

एस. एन. गणेशन अपने विवेचन में 'कब तक पुकारूँ' उपन्यास को व्यापक परिवेश के उपन्यासों की श्रेणी में रखते हैं। उनका मानना है कि 'कब तक पुकारूँ' करनट जाति के लोगों के जीवन-क्रम पर आधारित उपन्यास है। इनके विश्वासों, अंधविश्वासों, पारिवारिक संबंधों तथा भले-बुरे सामाजिक आचरणों पर प्रकाश डाला गया है। यद्यपि चित्रण व्यापक है, तो भी क्षेत्र सीमित है, अतः प्रायः विशाल उपन्यासों में आने वाली शिथिलता इसमें नहीं आई है। (सं.डॉ. त्रिभुवन सिंह, हिंदी उपन्यास की नवीनतम प्रवृत्तियाँ, पृ.112)

उपन्यास का नायक सुखराम है, जो करनट है तथा उसका संबंध एक ठाकुर वंश से है। कुछ पीढ़ी पहले अधूरे किले की मालकिन ठकुराइन ने एक दरबान से अपना अनैतिक संबंध स्थापित कर लिया, जिसके कारण उसकी संतान ठाकुर न कहलाकर नट कहलाने लगी। उसी वंश में सुखराम का जन्म हुआ। सुखराम नटों का पेशा अपनाकर जीवन यापन करता है परंतु अपने को ठाकुर समझता है। जब दारोगा का संदेशा लेकर सिपाही आता है तो वह प्यारी को जाने से मना करता है-"जानती है तू ठाकुर की बहू है। (रांगेय राघव, कब तक पुकारूँ, पृ.32)। कजरी से सुखराम नट कहता है-'मैं इसी किले के असली मालिक के ठाकुर खानदान से हूँ। मैं ही इस किले का असली मालिक हूँ। मेरा बाप, मेरा बाबा, मेरा परबाबा और उसकी माँ, बस यही इसे नहीं भोग सके। (वही, पृ.78)

बचपन में ही माता-पिता की मृत्यु हो जाने के कारण वह इसीला नट के साथ रहने लगा। कालांतर में उसका विवाह इसीला की पुत्री प्यारी से हो गया। सुखराम प्यारी के साथ गाँव-गाँव घूमकर खेल दिखाता था। प्यारी भी लोगों के साथ अपना मांसल संबंध स्थापित कर धन कमा लेती थी, जिससे दोनों प्रसन्न रहा करते थे। कुछ दिन के बाद एक सिपाही रुस्तम खाँ ने प्यारी को रखैल के रूप में अपने घर रख लिया। इससे सुखराम को अत्यधिक मानसिक वेदना हुई, किंतु उसने प्यारी से अपना संबंध नहीं तोड़ा। कुछ दिन बीत जाने के बाद उसने कुर्री की पत्नी कजरी से अपना विवाह कर लिया। इस घटना से प्यारी को अत्यंत पीड़ा हुई। वह सुखराम से कहती है-"मैंने जो कुछ किया, तुमसे कहकर और तूने जो किया मुझसे छिपाकर।" (वही, पृ.57)। प्यारी को इस

बात का मलाल है कि सुखराम ने उसकी 'चाहत' का भरोसा नहीं किया। प्यारी का यह रूप हमें आधुनिक युग की उन नारियों की ओर ले जाता है, जो वेश्या बनकर अपने देश की रक्षा के लिए जासूसी करती हैं। ये नारियाँ भी अभिनंदनीय हैं, जो अपनी व्यष्टि की सीमा से निकल कर अपने को समष्टि में तिरोहित कर देती हैं। देश को आक्रमणकारियों से मुक्ति दिलाने में सहयोगी बनती हैं।

पुलिस के अमानवीय दमन के विरोध में सुखराम कहता है-"तुम यों रोओगी तो उनकी इच्छा जो पूरी हो जाएगी। उनका काम है लोहे से लोहा काटना। तुम डरोगी तो उनकी हिम्मत बढ़ेगी। रोओ नहीं भाभी। उनको जुल्म करने दो, तुम रोओ नहीं। सहो और सहा नहीं जाता है तो लड़ो। हम नट हैं। हमारे पास कुछ नहीं। हम जुआरी, चोर, उचक्के, बेईमान, कमीने, धोखेबाज, झूठे हैं। हमारी औरतें कुतियों की तरह रहती हैं। ये सिपाही, ये बड़े लोग उन्हें बीमारी देते हैं, फिर वे औरतें वे ही बीमारी हमें देती हैं। फिर हम मरते हैं। मरते वक्त गुस्सा आता है तो कत्ल तक करते हैं। हम कभी किसी का भला नहीं कर पाते, हमें मौका मिलता है तो हम लोगों को ठगने का जतन करते हैं। जो भूखे मरते हुए किसान हैं, वे भी हमसे दुखी हैं। उन्हें बौहरा नोचता है, वकील ठगता है, पुलिस खाती है, सब चूसते हैं, पर बेघरबार कुत्ते की तरह घूम-घूमकर जूठन खाने को अपनी आजादी कहते हैं। पर हम रोते नहीं। तुम कैसे रोती हो? (वही, पृ.263)

सुखराम में आभिजात्य वर्ग की महत्त्वाकांक्षाएँ हैं। 'अधूरा किला' उसकी महत्त्वाकांक्षाओं का प्रतीक है। शोषण के प्रति उसके हृदय में विद्रोह है। पुलिस और समाज के शोषक वर्गों के प्रति उसके मन में असीम क्रोध संचित है। रांगेय राघव ने केवल इतिहास को, जीवन को, मनुष्य की पीड़ा को और मनुष्य की उस चेतना को, जो अंधकार से जूझने की शक्ति रखती है, उसे ही सत्य माना। रांगेय राघव ने जीवन की जटिलतर होती जा रही संरचना में खोए हुए मनुष्य की, मनुष्यत्व की पुनर्रचना का प्रयत्न किया, क्योंकि मनुष्यत्व के छीजने की व्यथा उन्हें बराबर सालती थी। उनकी रचनाएँ समाज को बदलने का दावा नहीं करतीं, लेकिन उनमें बदलाव की आकांक्षा जरूर है।☆

ऐसा नहीं है कि कि पुराने ज़माने में सभी लेखक अपने यश से तृप्त रहते थे। सेनापति अपने को इतना अच्छा कवि मानते थे कि उन्हें चोर-कवियों से सदैव सावधान रहने की इच्छा बनी रहती थी। उनसे अच्छे कवि थे कालिदास। शुरू में लोग उनकी सुनते ही नहीं थे तो वे कहते थे - भाई, जरूरी थोड़े ही है कि सभी पुराना अच्छा हो और नया सभी बुरा हो - अपनी अकल से काम लो। पर व्यास जैसे कवि को सुन भी लिया जाता था तो वे यों रोया करते थे कि - मैं कब से हाथ उठाकर चिल्ला रहा हूँ, मेरी कोई सुनता ही नहीं। इधर कि मित्र कहते थे-अजी पचास बरस तक रवीन्द्रनाथ की भी क्या पूछ थीं? मेरा भी वक्त आएगा। किसी लेखक को यह शिकायत है कि - मैंने इतना लिखा है, पर मेरी तूती नहीं बोलती। शक्सपीयर की भी यही हालत रही थी।

- रांगेय राघव

मध्यांतर

आलूरि बैरागी की कविताएँ

आंध्र प्रदेश के ऐतानागर (गुंटूर जिला) में कृषक परिवार में आलूरि बैरागी (5.9.1925-9.9.1978) का जन्म हुआ। उनके पिता वेंकटरायुडू के कारण आलूरि बैरागी में बचपन से ही देशभक्ति की भावनाएँ पनपने लगीं। तेलुगु उनकी मातृभाषा थी। हिंदी साहित्य के अध्ययन हेतु वे बिहार गए। तेलुगु के समान ही उन्होंने हिंदी और अंग्रेजी में दक्षता प्राप्त की।

मुझको विश्वास दो

मुझे तनिक विश्वास दो
पहाड़ों को चूर-चूर कर सकता!
फूटे टमाटर-से सूरज को
ठंडे पापड़-से चंद्रमा को
आसमान के जूठे थाल से हटा सकता!
अपने बाहु-बंधन में
इस विशाल विश्व को
फटी चटाई-सा समेट सकता!
निस्सहाय मानव का भाग्य-लेख
अपनी कलम की एक लकीर से काट सकता,
जीवन के राज-सभा-प्रांगण से
अनय, अपजय, भय, संशय को
गरदनी देकर निकाल सकता,
यही नहीं और न जाने क्या क्या कर सकता,
लेकिन हाँ, मुझे तनिक विश्वास दो।

महाकाल से भिड़कर लड़ूँगा
शिव के त्रिशूलाग्र पर
सिर के बल खड़ा हो जाऊँगा!
मेरे प्रबल प्रताप से
घर-घर में गगन-कुसुम फूलेंगे,
देव-तरुओं के सुधा-मधुर, विविध फल फलेंगे,
दिन दूने रात चौगुने होंगे।
बहुरूपिया बनूँगा
कुएँ, नाले, तालाब खुदाऊँगा!
जगत की धर्मशाला जब भर जाएगी तो
नई धर्मशालाएँ बनाऊँगा।
आसमान के नीले कपड़े का थान फाड़
जग-जन के लिए कुरते सिलाऊँगा।
लेकिन हाँ, मुझे तनिक विश्वास दो।

विश्वास-हीन काया सिगरेट की खाली टिन,
विश्वास-हीन आत्मा सीली सलाई-सी

विश्वास-हीन जीवन सिगरेट की बुझी राख,
दया की जूठी भीख।
सब कुछ है बस एक सुदृढ़ विश्वास नहीं...
मुझे तनिक विश्वास दो,
विश्वास दो ! विश्वास दो ! !

उपेक्षित

निस्तब्ध निशा का अंतराल
मेरे अंतर में एक आग
जीवन का सकरुण विहाग।
दूर शून्य की ओर आज
मैं तूफ़ानों का लिए वेग
निज क्षुब्ध हृदय का महोद्वेग !

यह सघन निशा ज्यों दिशाहीन
असमय का कुसुम मलीन दीन
यह अंधकार
मेरे उर का ज्यों महाभार !

इस विश्व-हृदय के व्रण-सा मैं बढ़ता
निज अंध नियति की ओर चला चढ़ता
सदा उपेक्षित
जन-जीवन से निरपेक्षित
जग से ठुकराया
मैं बढ़ चला
निज चरम तिमिर की ओर
ध्यान में खोया !
घहर उठे घन घोर
हहर उठी झंझा
सिहर उठी चपला छू नभ के छोर !
काँपी रजनी, काँपे प्रदीप
शंपा-मुक्ता के क्षितिज-सीप !
पर मैं निरपेक्ष
खोल भावना की पाँखें उड़ता हूँ,
कभी इधर, हाँ, कभी उधर मुड़ता हूँ !

मैं हूँ विदेह
निर्मोह और निस्नेह !
भीषण झंझा में चूर्ण-चूर्ण
मैं आज शून्य में पूर्ण !
मैं जाता हूँ
यदि आए तुमको कभी याद
तो कोई कुसुम हिला देना,
वह होगा
मेरी स्मृति का प्रासाद !

कविता नहीं रही

प्यारे मित्र ! अब कविता नहीं रही !
दिन दिन की उदय-कांति में नवता नहीं रही !
मत पूछो तुम कारण !

मृतप्राय कविता को यह चरम चुंबन !
करवट नहीं, अस्फुट मर्मर नहीं
रंग-बिरंगे मधुर स्वप्न नहीं
अंतिम तम की निश्चल निद्रा में कोई बाधा न रही।

हृदय की जिस रहस्यमय गुहा से
करुणा-निर्झर द्रवित, स्रवित होगा,
उसमें आग आग लगी...
भीषण द्वेष-विष की आग,
सहसा नील हालाहल उठा जाग ।
आग में आग की ही फसल खाकर
जिएँगे मानव-गण,
आँसू सूख गए कब के, आग बरसेंगे नयन !
छूटेगा न तन से स्वेद

न रहेंगे मोद-खेद।
हास हर्ष को सूचित न करेगा,
रुदन शोक को सूचित न करेगा,
रोष कोप को सूचित न करेगा,
मनुज-जीवन अभिनय बन जीवन
जीवन का सूचक न होगा।
देखो उधर ! पाँत बाँध पुतलियों-से कौवों-से यंत्र-मनुज
निष्प्राण, निराघ्राण पलल-पादप की शाखाएँ असहज !
बटन दबा दो - बस, नींद में चलेंगे !
फौज की कवायत-सी एक बार सभी साँस लेंगे !
इन कठपुतलियों को भूख नहीं, प्यास नहीं !
भीती नहीं, प्रीति नहीं, द्वेष नहीं !
फटकारो, दुतकारो, झिड़को, थूको उन्हें रोष नहीं।
कल की दुनिया में
लैब के शीशों के गर्भ से होगा मनुष्य-जनन,
औषधियाँ पिता, विष-रसायन माता बनकर
सृजे जाएँगे शिशु-गण
आँसू, हँसी, सपनों से अपरिचित जड़ पशु-गण
इस पशु-वृंद के कंधों की पालकी पर चढ़कर आ रहा
नहुष-कल्कि - भावी युग का विधाता !
रासायनिक मानव वह विश्व-त्राता !

पिरामिड

कंकड़-पत्थर फुटकर देव-देवियों को मैं
नहीं नवाँता अपना उन्नत भाल !
भैंसों की खुजली के लिए मुलायम मलहम-से
शिलालेख गढ़ना नहीं मेरा कमाल।
काम-क्षुधित पौराणिक कवि-गण के
भीषण नख-शिख मिले
केलि-दक्ष दक्षिण-नायक की
अस्ति-नास्ति विचिकित्सा का कारण,
मृगया मिस शत्रु-हनन प्रिय-हरण,
कुलटा कुटिनी चेटी के प्रकरण
का नहीं मैं कवि, गायक, प्रिय चारण,

मैं नहीं गाता उनके गुण-गण !

कविता-सराय-द्वार-सम्मुख जूठी पत्तलें चाट

मैं नहीं करता उदर-पोषण !

मेरा पूजा-मंदिर

सुंदर स्वप्न ताज नहीं,

पुनीत रजत श्वेत गौरीशंकर शिखर।

मैं रबर की लचर गुड़िया

दंपति के गले में माला नहीं डालता,

ताश के महल, नन्हें घरौंदे नहीं रचाता !

शब्दों की ईंटें चुन

अर्थ-अनर्थ की व्यर्थ अटारियाँ

मंदिर नहीं बनाता,

मन के तिनके चुन-चुन

सपनों की नीड नहीं सजाता,

अंधविश्वास के सुंदर मंदिर नहीं बनाता।

मेरी भावना का शिशु रहा सदा मातृहीन,

मेरा मानस-विश्व शाश्वत-शर्वरी-लीन

निरंतर दुरंत बर्बर दस्युमय

सिंधु-पथ का साहस-दान

मेरा एकांत गान।

साहसी के अद्‌भुत अभियान की कोई राह नहीं,

परिचित मृगया में उत्साह नहीं।

किंतु यह गद्य-धरा

जहाँ बिना घिसी-पिटी लीक के लिए

तिल भर भी स्थान नहीं,

जहाँ प्रयाण साहस का मान नहीं।

हाँ वहाँ निश्चिह्न धारा

नीरधि-गर्भ-सुमन-सी अनाघ्रात, अज्ञात, अनाथ।

वहाँ अभव प्रभंजन से आलोकित शैकत के

सागर में राह नहीं

विलय वायु-वीचियों के सिवा कराह आह नहीं।

वहाँ स्वयं राह बनाता राही !

सच्चा राही वही देह-पंथ का दही निर्मोही !

मेरे अक्षर अनगढ़ शिला-शिखर,

छेनी को नहीं झुकाते अपना उन्नत सिर !

सदियों के शोक-पाक में पग-पग

अमृत-सफलता-निरीक्षण-निरत ये पाषाण

शाश्वत-शिल्प-शीला-जटित मसृण प्राण।

एकाकी मनुजात्माओं का भीकर सैकत-सागर-तट

जहाँ जलते बालू के ढूह बना मिटा रही झंझा विकट

और मैं पिरामिड बना रहा अजर, अमर, अमिट,

प्रणय मरण खेलें जिन में आँख-मिचौनी-सी

मानस की इस वंध्या-संध्या में

मैं बना रहा पिरामिड। ☆

आलेख

हिंदी साहित्य के अनन्य उपासक

- विजनंपाटि यशोधरा

एस.एम.के.टी.एस.पी.के.एच.सरकारी पाठशाला, पी.वी.तोटा, गुंटूर

रांगेय राघव असाधारण प्रतिभा के धनी रचनाकार थे। वे हिंदी के विशिष्ट और बहुमुखी प्रतिभावालों में से एक थे। हिंदी साहित्य के लगभग सभी विधाओं में रांगेय राघव ने लेखनी चलाई। उनका बाह्य व्यक्तित्व आकर्षक था। गौर वर्ण, उन्नत ललाट, लंबी नासिका और चेहरे पर गंभीर मुस्कान। वे हिंदी साहित्य के अनन्य उपासक थे। वे मूलत तमिल भाषी थे। उनका जन्म 17 जनवरी, 1923 को उत्तर प्रदेश के आगरा में हुआ। मृत्यु 12 सितंबर, 1962 को महाराष्ट्र के मुंबई में हुई। पिता श्री रंगाचार्य के पूर्वज लगभग तीन सौ वर्ष पहले जयपुर और फिर भरतपुर के बयाना कस्बे में आकर रहने लगे थे। रांगेय राघव का जन्म यहीं हुआ। उन्हें तमिल और कन्नड भाषा का भी ज्ञान था। रांगेय राघव की शिक्षा आगरा में हुई थी। सेंट जॉन्स कॉलेज से 1944 में स्नातकोत्तर और 1949 में आगरा विश्वविद्यालय से गुरु गोरखनाथ पर शोध करके उन्होंने पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त की थी। रांगेय राघव को हिंदी, अंग्रेजी, ब्रज और संस्कृत पर असाधारण अधिकार था। उन्होंने 13 वर्ष की आयु में लिखना शुरू किया। 1942 में अकालग्रस्त बंगाल की यात्रा के बाद एक रिपोर्ताज लिखा था- 'तूफानों के बीच'। यह रिपोर्ताज हिंदी में चर्चा का विषय बना। साहित्य के अतिरिक्त चित्रकला, संगीत और पुरातत्व में विशेष रुचि रखते थे। 39 वर्ष की आयु में ही कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, रिपोर्ताज के अतिरिक्त आलोचना, संस्कृति और सभ्यता पर कुल मिलाकर 150 से अधिक पुस्तकें लिखीं। रांगेय राघव के कहानी लेखन का मुख्य दौर भारतीय इतिहास की दृष्टि से बहुत हलचल भरा विरल कालखंड है।

रांगेय राघव उपन्यासकार, कहानीकार, कवि, आलोचक, नाटककार और अनुवादक थे। हिंदी, अंग्रेजी, ब्रज और संस्कृत में उन्होंने रचनाएँ की। अपनी रचनाओं पर उन्हें हिंदुस्तानी अकादमी पुरस्कार, डालमिया पुरस्कार, उत्तर प्रदेश शासन पुरस्कार, राजस्थान साहित्य अकादमी पुरस्कार आदि प्राप्त हुए। उन्होंने विदेशी साहित्य को हिंदी भाषा के माध्यम से हिंदी भाषी जनता तक पहुँचाने का महत्वपूर्ण कार्य किया। अंग्रेजी के माध्यम से कुछ फ्राँसीसी और जर्मन साहित्यकारों का अध्ययन करने के पश्चात् उनके बारे में हिंदी जगत् को अवगत कराने का कार्य भी उन्होंने किया।

रांगेय राघव की कहानियों की विशेषता यह है कि इस पूरे समय की शायद ही कोई घटना हो जिसकी गूँज-अनगूँज उनमें न सुनी जा सके। सच तो यह है कि रांगेय राघव ने हिंदी कहानी को भारतीय समाज के उन धूल-काँटों भरे रास्तों, लफंडरों-परजीवियों की फक्कड जिंदगी, भारतीय गाँवों की कच्ची और कीचड़ भरी पगडंडियों की गश्त कार्रवाई, जिनसे वह भले ही अब तक पूर्णतः अपरिचित न रही हो, पर इस तरह हिली-मिली

भी नहीं थी और इस दुनिया में से जीवन से लबलबाते ऐसे-ऐसे चरित्र प्रकट किए जिन्हें हम विस्मृत कर सकेंगे। गदल भी एक ऐसा ही चरित्र है।

अपनी सृजन यात्रा के बारे में रांगेय राघव ने स्वयं कोई खास ब्यौरा नहीं छोड़ा है। खासकर अपने प्रारंभिक रचनाकाल के बारे में, लेकिन एक जगह उन्होंने लिखा है, कि चित्रकला का अभ्यास कुछ छूट गया था। "1938 की बात है, तब ही मैंने कविता लिखना शुरू किया। सांध्य-भ्रमण का व्यसन था। एक दिन रंगीन आकाश को देखकर कुछ लिखा था। वह सब खो गया है और तब से संकोच से मन ने स्वीकार किया कि मैं कविता कर सकता हूँ। प्रेरणा कैसे हुई पृष्ठ लिखना अति दुरूह है। इतना ही कह सकता हूँ कि चित्रों से ही कविता प्रारंभ हुई थी और एक प्रकार की बेचैनी उसके मूल में थी।" अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'प्राचीन ब्राह्मण कहानियाँ' की प्रस्तावना में रांगेय राघव लिखते हैं कि "आर्य परंपराओं का अनेक अनार्य परंपराओं से मिलन हुआ है। भारत की पुरातन कहानियों में हमें अनेक परंपराओं के प्रभाव मिलते हैं। महाभारत के युद्ध के बाद हिंदू धर्म में वैष्णव और शिव चिंतन की धारा बही और इन दोनों संप्रदायों ने पुरातन ब्राह्मण परंपराओं को अपनी अपनी तरह स्वीकार किया। इसी कारण से वेद और उपनिषद में वर्णित पौराणिक चरित्रों के वर्णन में बदलाव देखने को मिलता है और बाद के लेखन में हमें अधिक मानवीय भावों की छाया देखन को मिलती है। मैं यह महसूस करता हूँ कि मेरे से पहले के लेखकों ने अपने विश्वास और धारणाओं के आलोक में मुख्य पात्रों का वर्णन किया है और ऊँचे मानवीय आदर्श खड़े किए हैं और अपने पात्रों को सांप्रदायिकता से बचाए रखा है। इसलिए मैंने पुरातन भारतीय चिंतन को पाठकों तक पहुँचाने का प्रयास किया है।" रांगेय राघव के बारे में कहा जाता था कि वे दोनों हाथों से रात दिन लिखते थे।

शायद बहुत कम लोग यह जानते होंगे कि हिंदी साहित्य का यह अनूठा व्यक्तित्व वस्तुतः तमिल भाषी थे, जिसने हिंदी साहित्य और भाषा की सेवा करके अपने अलौकिक प्रतिभा से 'हिंदी के शेक्सपीयर' की संज्ञा ग्रहण की। रांगेय राघव नाम के पीछे उनके व्यक्तित्व और साहित्य का समन्वय भी दिखाई देता है। अपने पिता रंगाचार्य के नाम से उन्होंने रांगेय स्वीकार किया और अपने स्वयं के नाम राघवाचार्य से राघव शब्द लेकर अपना नाम रांगेय राघव रख लिया। उनके साहित्य में जैसी सादगी परिलक्षित होती है वैसे ही उनका जीवन सीधा-सादा और सादगीपूर्ण रहा है।

भरतपुर जिले में एक तहसील है वैर। शहर के कोलाहल से दूर प्राकृतिक वातावरण, ग्रामीण सादगी और संस्कृति तथा वहाँ के वातावरण की अद्भुत शक्ति ने रांगेय राघव को साहित्य की साधना में इस सीमा तक उपयुक्त किया कि वह उस छोटी सी नगरी वैर में ही बस गए। वैर भरतपुर के जाट राजाओं के एक छोटे से किले के कारण तो प्रसिद्ध रही, परंतु वहाँ तमिलनाडु के स्वामी रंगाचार्य का दक्षिण शैली का सीतारामजी का मंदिर भी बहुत प्रसिद्ध है। इस मंदिर के महंत रांगेय राघव के बड़े भाई रहे हैं। मंदिर की शाला में बिल्कुल तपस्वी जैसा जीवन व्यतीत करनेवाले तमिल भाषी व्यक्ति ने हिंदी साहित्य की देवी की पुजारी की तरह आराधना-अर्चना की। जब रांगेय राघव सोचते तो सोचते ही रहते थे। कई दिनों तक न वह कुछ लिखते और न पढ़ते। जब पढ़ने की धुन सवार होती तो वे लगातार कई दिनों तक पढ़ते ही रहते थे। सोचने और पढ़ने के बाद जब कभी उनका मूड बनता तो वे लिखने बैठ जाते और निरंतर लिखते ही रहते थे। लिखने की उनकी कला अद्भुत थी। एक बार तो लिखने

बैठे तो वे उस रचना को समाप्त करके ही छोड़ते थे। इसी कारण जितनी कृतियाँ उन्होंने लिखीं वे सब पूरी की पूरी लिखी गई। उनका अंतिम उपन्यास 'आखिरी आवाज' कुछ अर्थों में इस कारण अधूरा रह गया कि वह कई महीनों तक मौत से जूझते रहे। काश ऐसा होता कि वह मौत से जूझने के बाद जीवित रहे होते तो शायद एक और उपन्यास मौत के संघर्ष के बारे में हिंदी साहित्य को मिल गया होता।

'कब तक पुकारूँ' उपन्यास राजस्थान और उत्तर प्रदेश की सीमा से जुड़ा वैर नटों की भी बस्ती से संबंधित है। यह तत्कालीन जरायम पेशा करनटों की संस्कृति पर आधारित एक सफल आँचलिक उपन्यास है। सुखराम करनट अवैध संबंध से उत्पन्न नायक है। नट खेल-तमाशे दिखाते हैं और नटनियाँ तमाशों के साथ-साथ दर्शकों को यौन संतुष्टि देकर आजीविका में इजाफा करती हैं। करनटों की युवा लड़कियाँ प्रायः ठाकुरों के पास जाया करती थीं। नैतिकता क्या है, इसका ज्ञान उन्हें नहीं था। थोड़े से पैसों की खातिर वे कहीं भी चलने को तैयार हो जाती थीं।

रांगेय राघव समकालीनता के ही प्रखर पारखी नहीं थे बल्कि इतिहास की धड़कनों को भी पूरी संवेदना से महसूस करते थे और उनकी बारीकियों को पाठकों तक पहुँचाने की कोशिश करते थे। 'राह न रुकी' उपन्यास में चंदना एक ऐसी ही पात्र है जिसके माध्यम से उन्होंने बुद्ध और महावीर युग के उस पुनर्जागरण को प्रस्तुत किया है, जिसमें पहली बार ब्राह्मण संस्कृति को तगड़ी चुनौती मिली थी और हजारों वर्षों के वैदिक युग की उपलब्धियों पर प्रश्न चिह्न लग गया था।

रांगेय राघव ने 1950 ई. के पश्चात् कई जीवनी प्रधान उपन्यास लिखे हैं। इनका पहला उपन्यास सन् 1951-53 ई. के बीच प्रकाशित हुआ। 'भारती का सपूत' जो भारतेंदु हरिश्चंद्र के जीवनी पर आधारित है। तत्पश्चात् विद्यापति के जीवन पर 'लखिमा के आँखें', बिहारी के जीवन पर 'मेरी भव बाधा हरो', तुलसी के जीवन पर 'रत्ना की बात', कबीर के जीवन पर 'लोई का ताना' और 'धूनी का धुंआ' गोरखनाथ के जीवन पर आधारित है। 'देवकी का बेटा' उपन्यास का प्रकाशन राजपाल एंड संस ने किया था। अपने इस उपन्यास में उन्होंने जननायक श्रीकृष्ण के चरित्र को ऐतिहासिक दृष्टि से प्रस्तुत किया है।

रांगेय राघव ने विशिष्ट काव्य कलाकारों और महापुरुषों के जीवन पर आधारित उपन्यासों की एक माला लिखकर साहित्य की एक बड़ी आवश्यकता को पूर्ण किया है। अनेकानेक अलौकिक घटनाओं को लेखक ने वैज्ञानिक कसौटी पर रखकर उन सबका संगत अर्थ दिया है। उन्होंने ललित निबंध और यात्रा संबंधी निबंध भी लिखे, कुछ समीक्षात्मक निबंध भी जो इनकी आलोचना दृष्टि को स्पष्ट करते हैं। 'विज्ञापन' नामक निबंध में उन्होंने आधुनिक चकाचौंध व बढ़ती विज्ञापनबाजी का चित्रण कर किया है। साहित्यकला, विविध वाद, जीवन की परिस्थितियाँ एवं समकालीन स्थतियों से जुड़े प्रश्नों पर रांगेय राघव ने बड़ी सूक्ष्म दृष्टि से विचार व्यक्त किया है। ☆

आलेख

नट समुदाय का जीवंत दस्तावेज़ : 'कब तक पुकारूँ'

- उपमा शर्मा

6वाँ माइल, गंगटोक, सिक्किम-737102

रांगेय राघव हिंदी के उन प्रतिभाशाली लेखकों में से थे, जिन्होंने साहित्य के विविध आयामों की समृद्धि के लिए अपनी कुशल लेखनी से अनेक विधाओं में साहित्य सर्जन का कार्य नियमित रूप से करते रहे थे। ये मुख्य रूप से दक्षिण भारत के थे, लेकिन इनका जन्म उत्तर प्रदेश में हुआ था। इन्होंने अपनी लेखनी के माध्यम से समाज में व्याप्त समस्त समस्याओं को बड़े ही कलात्मक रूप से चित्रित किया है। इनकी प्रसिद्धि का मुख्य आधार 'कब तक पुकारूँ' उपन्यास को माना जाता है जो कि एक आंचलिक उपन्यास है। इस उपन्यास का कमजोर पक्ष यह है कि यह उपन्यास आंचलिकता के शास्त्रीय मानदंडों पर उस तरह से खश नहीं उतरता है जिस तरह से फणीश्वर नाथ रेणु का 'मैला आंचल' आंचलिकता के कसौटी पर खरा उतरता है। इस संदर्भ में डॉ. मधुरेश का कहना है कि 'कब तक पुकारूँ' तथाकथित आंचलिकता से भिन्न है। इसमें किसी अंचल विशेष के व्यापक और बहुविध जीवन को अंशतः ग्रहण एकदम नहीं है।"(मधुरेश (1978), राघव रांगेय : भारतीय साहित्य के निर्माता , साहित्य अकादमी, पृ. 54)।किसी भी आंचलिक उपन्यास का नायक किसी अंचल विशेष से होता है लेकिन इसका नायक किसी अंचल विशेष से न होकर जनजातीय समुदाय से है और न ही अंचल विशेष में प्रयुक्त शब्दों का प्रयोग हुआ है। हुआ भी है तो कहीं कहीं कुछ कुछ शब्द जिसकी वजह से यह उपन्यास पढ़ते समय ऐसा नहीं लगता है कि यह आंचलिक उपन्यास है। फिर भी इस उपन्यास को पूरी तरह नकारा भी नहीं जा सकता है कि यह पूर्णतः आंचलिक उपन्यास नहीं है। यह उपन्यास मुख्य रूप से नट समुदाय पर केंद्रित है।

नट समुदाय उत्तर भारत में निवास करने वाली विभिन्न समुदायों में से एक है जो मुख्य रूप से बाजीगरी, कलाबाजी और नाच-गान आदि के माध्यम से अपना जीवन यापन करते हुए नज़र आते हैं। इन्हें बाजीगर या कलाबाज भी कहा जाता है। शरीर के अंग-प्रत्यंग को लचीला बनाकर, भिन्न-भिन्न मुद्रा बनाकर, रस्सी पर चलकर एवं विभिन्न प्रकार के करतब दिखाकर और लोगों का मनोरंजन करके अपनी मूलभूत आवश्यकतायों की पूर्ति करते हैं। यहीं इनका मुख्य पेशा है। इनकी समुदाय की औरतें भी नृत्य तथा गायन आदि में निपुण होती हैं। इतना ही नहीं ये लोग विभिन्न प्रकार की आवाजें निकालते हैं और बासुरी इत्यादि भी बजाने में माहिर होते हैं।

'कब तक पुकारूँ' उपन्यास को एक विहंगम दृष्टि से देखा जाए तो यह उपन्यास आदिवासी उपन्यासों के केंद्र में है। यह आदिवासी विमर्श को उजागर करता है। आदिवासी समुदाय के लोग हमेशा से ही हाशिये पर रहे हैं जिनको केंद्र में लाने का प्रयास किया गया लेकिन कागजी तौर पर, यथार्थ में नहीं। यूँ तो कहा जाता है कि कलम से बढ़कर दुनिया में कोई ताकत नहीं जो किसी को हरा सके लेकिन कलम का प्रयोग भी लोगों ने स्वार्थ पूर्ति के

लिए किया। लेखकों ने आदिवासी उपन्यासों को लिखने के बाद अपना काम खत्म समझा और प्रशासन ने नियम लागू करने के बाद। उन्होंने कभी यह नहीं सोचा कि इसका लाभ आदिवासियों को मिल भी पा रहा है या नहीं।

'कब तक पुकारूँ' उपन्यास की कथा दो भागों में चलती है। एक वर्तमान में 1950 के आसपास और दूसरा 1925 के आस पास। इस उपन्यास का मुख्य पात्र सुखराम है। अन्य पात्र भूमिका में है जैसे सुखराम की पत्नी प्यारी और कजरी, सुखराम की पुत्री चंदा और उसका प्रेमी नरेश। इन्हीं पात्रों के माध्यम से रांगेय राघव नट समुदाय में व्याप्त सभी समस्याओं को उजागर करते हुए नज़र आते हैं। नट समुदाय में अशिक्षा, बेरोजगारी, भुखमरी, गरीबी, शोषण, स्थायी जमीन का अभाव आदि समस्याएँ दिखाई देती हैं। इनके समुदाय में सबसे बड़ी समस्या भुखमरी की है जिसकी वजह से इस समुदाय के लोग अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु कुछ भी करने के लिए तैयार रहते हैं और इन्हीं तमाम विवशताओं का फायदा ठाकुर और जमींदार लोग उठाते हैं। नट समुदाय के लोग अपनी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जंगल पर निर्भर रहते हैं। शिकार करके जो कुछ इनको मिलता है, इसी से ये लोग अपना पेट भरते हैं। इस समुदाय के लोग करतब दिखाने में भी माहिर होते हैं। इनकी औरतें बहुत ही सुंदर होती हैं और नाच-गान, रस्सी पर चलना इत्यादि काम करती हुई नज़र आती हैं।

'कब तक पुकारूँ' उपन्यास के माध्यम से नट समुदाय में व्याप्त उनकी संस्कृति, सभ्यता और परंपरा का उल्लेख बहुत ही मार्मिक रूप से किया गया है। साथ ही साथ उनके समाज में व्याप्त उन समस्याओं को भी उजागर किया है, जिस ओर किसी का ध्यान नहीं जा रहा था। जिस समय यह उपन्यास लिखा गया था उस समय बहुत कम लोग जनजातीय समस्याओं पर केंद्रित लिखा रहे थे। लेखक ने इस उपन्यास के माध्यम से अशिक्षा की समस्या को उजागर करते हुए बताते हैं कि किसी भी समाज को आर्थिक रूप से मजबूत करना है तो सबसे पहले उनको शिक्षित करना चाहिए क्योंकि सभी समस्याओं का जड़ अशिक्षा ही है। इसके आभाव में उनका विकास होना असंभव है। शिक्षित होने पर वह अपने अधिकारों के बारे में जागरूक हो पाएँगे और उनके साथ कोई भी शोषण एवं अन्याय करने से पहले दस बार सोचेगा। नट समुदाय की भी यही समस्या है कि ये लोग अशिक्षित हैं और वह किसी सम्मानजनक कार्य के लिए योग्य नहीं है, जिसकी वज़ह से नट समुदाय की औरतें जमींदारों व साहूकारों के बिस्तर कर्म करने के लिए मजबूर हैं। उनके खेतों में काम करने पर उचित पैसे नहीं पाने के कारण उन्हें दो वक्त की भर पेट रोटी नसीब नहीं हो पाती है और अपनी मूलभूत आवश्यताओं की पूर्ति हेतु चोरी चकारी भी करने से पीछे नहीं हटते हैं। इस समुदाय के लोग आज भी मुख्य धारा से अलग थलग जीने के लिए विवश नज़र आते हैं। नट एक खानाबदोश कौम है, जिनके यहाँ लिखने पढ़ने की बात तो सोची भी नहीं जा सकती। इसलिए इन लोगों को रांगेय राघव के उपन्यास के बारे में तो कुछ पता ही नहीं था। वह तो जब वैर में 'कब तक पुकारूँ' टीवी सीरियल की शूटिंग हुई, तब जाकर सुखराम नट उपन्यास से निकल कर बाहर आए। इनकी समाज की स्थिति सभी वर्ण व्यवस्था में सबसे नीचे दर्जे की है और शायद कहीं न कहीं सुखराम का अपने आप को ठाकुर समझना इस बात का संकेत है कि उसे अपनी बिरादरी में हीनता का तीव्र बोध होता है।

नट समुदाय के लोग जड़ी बूटियों का प्रयोग करने में बड़े ही माहीर होते हैं और इस कार्य में वे लोग अपने बच्चों को शुरू से ही दक्ष बनाते हैं ताकि वे जीवन निर्वाह आराम से कर सके। क्योंकि ये लोग अन्य लोगों की तरह सामान्य जीवन व्यतीत नहीं कर पते हैं। इन्हें कोई भी जमींदार अपने खेत में काम नहीं देते हैं। इनके माथे पर आरंभ से ही चोरी का ठप्पा लगा होता है। इनको काम न मिलने पर जीविकापार्जन के लिए चोरी चाकारी करते हैं लेकिन ये इनकी प्रवृत्ति नहीं होती है बल्कि इनकी मजबूरी होती है। यहीं कारण है कि सुखराम का पिता उसे जड़ी बूटियों से संबंधित शिक्षा देता है। सुखराम कहता है कि 'पिता ने मुझे जड़ियाँ, बूटियाँ खोज खोजकर देनी शुरू की। वह मुझसे कहने लगा : सुखराम ! इन्हें पहचान लो। मैं सदा नहीं रहूँगा। यह विद्या मैंने नटों से सीखी है और इनके ही यहाँ का कायदा है कि बाप से बेटे को यह विद्या मिला करती है।' (कब तक पुकारूँ, पृ.21)। आदिवासी समुदाय के लोग इस विद्या को पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरण करते रहते हैं। यही कारण है कि आज भी इस धरोहर को आदिवासी समुदाय के लोग संभाले हुए हैं। इस आधुनिकता के दौर में भी ये लोग डॉक्टरों से उपचार नहीं करवाते हैं बल्कि अपनी जड़ी बूटियों पर यकीन करते हैं एवं हारी बीमारी में इसी का प्रयोग करते हुए नज़र आते हैं।

नट समुदाय में शादी-विवाह बहुत अधिक अस्थाई है एवं स्त्रियाँ विधवा नहीं रहती हैं लेकिन एक से अधिक औरत रखना, पुरुषों एवं स्त्रियों का शराब पीना, शराब बेचकर धनोपार्जन करना, करनटों की पतनशील सामाजिक विद्रूपताएँ हैं। प्यारी कहती है कि 'मैं कमीन, अनपढ़, नीचों में नीच, जाति की नीच बिरादरी के मेरे लोग नीच, पेट की भूखी और नंगी हूँ।'(वही, पृ.242)। नट समुदाय के लोगों के साथ गैर आदिवासी समुदाय के लोग हमेशा से ही भेद भाव करते रहे हैं। यहीं कारण है की प्यारी अपने को हीन समझती है। इनको गैर आदिवासी समुदाय में वह स्थान, मान-सम्मान नहीं मिला जो मिलना चाहिए था। अगर इनके समुदाय के कुछ व्यक्ति उच्च स्थान पर या किसी प्रशासनिक स्तर पर होते भी हैं तो नौकरी पाने के बाद वह भी अपने समुदाय के लोगों के तरफ देखना या उनके साथ बैठना पसंद नहीं करते हैं, जो लोग यह उम्मीद करते हैं कि हमारे समुदाय के लोग अगर प्रशासन में होंगे तो हमारा भी कुछ भला होगा। हमारे समुदाय का भी विकास होगा पर यह केवल सपना मात्र ही बन कर रह जाता है। कभी साकार नहीं होता है।

नट समुदाय की स्त्रियों की बात करें तो इनकी स्थिति अन्य समुदाय की स्त्रियों से बहुत ही दोयम दर्जे की है। प्यारी इस उपन्यास की नायिका है जो हर कदम पर विषम परिस्थितियों से जूझती हुई नज़र आती है। चाहे परिवार का पेट पालना हो या पुलिस के गिरफ्त से पति को छुड़वाना हो। हर चीज़ की कीमत वह अपनी शरीर से चुकाती है। जब सुखराम नशे की हालत में अपनी पत्नी को छोड़ कर जाने के लिए कहती है तो प्यारी इसका उत्तर देती हुई बोलती है कि 'तूने मेरे पेट से एक ठाकुर लेने के लिए, अपना सपना पूरा करने के लिए मुझसे प्यार का स्वान रचा था? तेरे लिए मैंने अपने आपको मिटा दिया। दरोगा हरनाम मुझे अपनी रखैल बनाकर सारे आराम देने को कहता था, पर तब मैंने जोबन का सौदा करके तुझे छुड़ाया था। जब अकाल पड़ा था, तब तेरे और तेरे बच्चे के लिए गाँव में जाकर परायों के संग रातें काटकर कमाकर लाती थी, ताकि तुझे बचा सकूँ। और मेरे नटों

ने मुझसे कभी घिन नहीं की, पर तू मुझसे मन ही मन नफरत करता रहा।' (वही, पृ.23)। यूँ तो हर समुदाय की स्त्रियों की स्थिति बहुत ही दयनीय होती है पर जनजातीय समुदाय की स्त्रियों का दोहरा शोषण हर स्तर पर होता है। इन स्त्रियों का संघर्ष घर से आरंभ होता है और अंत जमींदारों के दरवाजे पर। इनके शरीर का सौदा कई बार इनके घर के लोग ही करते हुए नज़र आते हैं। प्यारी के साथ भी कुछ ऐसा ही होता है। सुखराम सब कुछ जानता है फिर भी प्यारी को उस नारकीय दुनिया से नहीं निकलता है बल्कि उसके शरीर को बेचकर या बेचते हुए देखता रहता है एवं उसके पैसों से ही जीवनयापन करता है और शाम को मदिरा पान करके सो जाता है। नट समुदाय में बच्चों के लालन पालन की ज़िम्मेदारी भी घर की औरतों की ही होता है ।

नट समुदाय के लोगों को नारकीय जीवन जीने केलिए विवश करने वाले कोई और नहीं है बल्कि गैर आदिवासी समाज है जो इनकी बहू बेटियों को केवल वस्तु मात्र ही समझते हैं, जिनका इस्तेमाल कोई भी बिना डर भय के जब मन चाहे कर सकता है। जिसे समाज के लोगों के रक्षा के लिए तैनात किया जाता है वही मौका पाकर उनका भक्षक बन जाता है। सोना कहती है कि 'तुम नहीं चाहते तुम्हारी बेटी इज्जत से रहें ? हम नट है। दुनिया में हमारी कोई इज्जत नहीं। हमें जब चाहे पुलिस वाले पकड़ लेती हैं। राजा के अहलकार हमारी औरतों को ले जाते हैं। हम चोर समझे जाते हैं।' (वही, पृ.26)। ये लोग भी सम्मान से जीना चाहते हैं पर इनको सभ्य समुदाय के लोग मान सम्मान से जीने नहीं देते हैं। हर कदम पर इनके लिए एक चुनौती होती है। इनका जीवन इतना आसान नहीं होता जितना ऊपरी तौर पर दिखाई देता है।

निष्कर्षतः कह सकते हैं कि रांगेय राघव ने 'कब तक पुकारूँ' उपन्यास के माध्यम से नट समुदाय के जीवन का यथार्थ वर्णन किया है। उनके उपन्यास में आंचलिक शब्दों का प्रयोग भी कहीं कहीं हुआ है। इनके उपन्यास में हर कदम पर वर्ग चेतना और संघर्ष दिखाई पड़ता है। यूँ तो यह उपन्यास मुख्य रूप से नट समुदाय पर केंद्रित है लेकिन सभी जनजातियों के जीवन पक्ष को व्यापक फ़लक पर स्पर्श करता हुआ नज़र आता है। आदिवासी समुदाय के लोगों को कभी केंद्र में आने नहीं दिया गया और ये लोग आज भी अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष कर रहे हैं। इनके जीवन में कोई परिवर्तन भी नहीं हुआ। ये लोग हर कदम पर चुनौतियों का सामना किया लेकिन हाशिये से केंद्र में अभी तक नहीं आ पाए। ☆

कला प्रचार ही तो नहीं है। वह तो मनुष्य की इकाइयों को जुटाती है, पाठक अपने बल से ही रचना से साधारणीकरण करे तो ही हम विकास के पथ पर हैं। हमारा युग लघुता का युग है और विराट् सृष्टि के क्षेत्र में इस लघुता का जो नया सामंजस्य है वह एक ओर सुष्मा की उपेक्षा में है, तो दूसरी ओर चंचल की अतृप्ति में, जिसमें उपेक्षा निरासक्ति की सीमा तक पहुँच गई है।

– रांगेय राघव

आलेख

नारी विमर्श के दर्पण में रांगेय राघव

- जयप्रकाश नागला

महाराणा प्रताप सिंह मार्मा, गाड़ीपुरा, नांदेड-431604

(महाराष्ट्र)

सुप्रसिद्ध हिंदी साहित्यकार रांगेय राघव ने हिंदी साहित्य जगत के आकाश में साहित्य सूर्य-सी ऊर्जा का परिचय दिया। उनका साहित्य हिंदी जगत में अजर-अमर होना भी एक तपस्वी का प्रतीक माना जा सकता है। उनका साहित्य मात्र विपुल ही नहीं था, विचारात्मक दृष्टि का गहरा सागर ही था। रांगेय राघव उस दौर के साहित्यकार रहे हैं जिस दौर का समाज वैश्विक विचारों से कभी ताल-मेल साधने का स्वप्न भी कदापि नहीं देख सकता था। कुछ अवांछित बेड़ियों में जकड़े हुए भारतीय समाज को दिशा दिखाने का कार्य साहित्यकार रांगेय राघव ने किया। उन्होंने अपनी कहानी व उपन्यासों में नारी पात्र को बहुत ही गहन चिंतन के साथ प्रस्तुत किया। स्वतंत्रतापूर्व के नारी पात्र को हूबहू चित्रित करना उस समय की माँग भी रही होगी। प्रेमचंद के उपन्यास में नारी दमन नहीं झेलती, वह हालात की मारी है तो रांगेय राघव के नारी पात्र कहानी के साथ चलते नजर आते हैं। नारी पीड़ित है, नारी दमन का शिकार है, नारी दासी है तो नारी आधुनिक साँचे में ढलने की कोशिश करती है। उस समय भी नारी कठपुतली बनकर जीना नहीं चाहती थी, वह समाज के खोखलेपन से बाहर आने के लिए आतुर थी, लेकिन दुःसाहस भी कर नहीं सकती थी। रांगेय राघव के उपन्यास में नारी मात्र एक नायिका बनकर पाठकों की जिज्ञासा नहीं बनी है। वह सामाजिक जीवन के नवीन मूल्यों का कवच कुण्डल धारण करना चाहती है। नारी के अस्तित्व को उन्होंने उपन्यासों में बहुत ही मार्मिक रूप से रूपायित किया है। रांगेय राघव ने उपन्यासों में जाति, धर्म, वर्ण व्यवस्था तथा निम्न वर्ग के साथ अमानवीय व्यवहार को जिस तरह रेखांकित किया है उतनी ही सजगता से नारी मन को टटोला है। उनके साहित्य ने नारी को इस प्रकार विश्लेषित किया कि वह वर्तमान समय में भी प्रासंगिक लगता है।

घरौंदा, सीधा सादा रास्ता, छोटी सी बात, आग की प्यास, पतझर, प्रोफेसर आदि उपन्यास स्त्री विमर्श की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। 'पतझर' में मोहिनी नामक 20 वर्षीय युवती के किरदार का उल्लेख किया जाना इसलिए आवश्यक है कि उस समय मोहिनी अपने कॉलेज में ही एक युवा से प्रेम करती है। मोहिनी कायस्थ समाज से है तो युवक जगन्नाथ ब्राह्मण समाज से। दोनों ही विवाह नहीं कर पाते। अपने प्रेम की जानकारी परिवारजनों को नहीं दे पाते। उस समय अन्य जाति-समाज के व्यक्ति से प्रेम संबंध कायम करना डर का विषय था। अब मोहिनी व जगन्नाथ का प्रेम विफल होता है। मोहिनी के पिता उसका विवाह एक इंजीनियर से तय करते हैं, जो कानपुर से है, लेकिन मोहिनी इंजीनियर से विवाह नहीं करना चाहती। उस दौर का समाज बहुत ही परंपरावादी हुआ करता था। माता-पिता की मर्जी के बिना शादी-ब्याह के बारे में सोचना भी सामाजिक अपराध ही था। अब मोहिनी के सामने यह जटिल प्रश्न है कि विवाह के लिए किस तरह मना किया जाए। वह अनमनी सी रहने लगती है तो कभी गीत

गाने में मग्न रहती है। उसके पिता मनोचिकित्सक से इलाज करवाने ले जाते हैं तब मोहिनी डॉक्टर से साफ साफ कहती है कि जिस पिता ने उसकी परवरिश इतने लाड़-प्यार से की, उनको वह दुखी नहीं करना चाहती। इसी वजह से वह अंतर्जातीय प्रेम विवाह की बात अपने पिता से नहीं कर पाती। डॉक्टर से अपने अंतर्जातीय प्रेम संबंध के बारे में सब कुछ कह देती है। मोहिनी परिवार व सामाजिक मर्यादा का पालन करती है।

रांगेय राघव ने मोहिनी नामक पात्र को तत्कालीन युवती की भूमिका में इस तरह जीवंत उकेरा है कि परिवार व समाज व्यवस्था में नारी की मर्यादा वह नहीं तोड़ पाती। जब डॉक्टर मोहिनी के पिता के सामने उसकी बीमारी का कारण स्पष्ट करता है, तब भी मोहिनी के पिता उसकी बात नहीं मानते, लेकिन डॉक्टर की सलाह पर आखिर जगन्नाथ के साथ मोहिनी का विवाह करने के लिए तैयार हो जाता है। जब जगन्नाथ से बात की जाती है तब वह सोच में पड़ जाता है क्योंकि मोहिनी ब्राह्मण परिवार से नहीं है। यहाँ एक बात बहुत महत्वपूर्ण है कि मोहिनी जगन्नाथ के साथ विवाह करने के लिए तभी राजी होती है जब उसके पिता मान जाते हैं। उसकी मानसिक स्थिति ठीक न होने पर भी वह अपने पिता को दुखी नहीं करना चाहती। मोहिनी को मात्र नारी पात्र के परिप्रेक्ष्य में ही नहीं बल्कि उसे परिवार व समाज के प्रति भी जागरूक नारी के रूप में दर्शाया गया है।

रांगेय राघव के 'अंधेरे के जुगनू' उपन्यास की बृहद्वती बाल विधवा है। उसके भीतर एक द्वन्द्व पलता है। वह अपने आत्मविश्वास व आत्मसम्मान के प्रति सजग रहती है। कम उम्र में भी वह अपने संयम को मजबूत बनाकर रखती है। बाल विधवा होने के कारण उसे विलक्षण पीड़ा का सामना करना पड़ता है, परंतु वह आत्मसंयम के साथ कोई समझौता नहीं करती। उसके सामने ऐसी स्थितियाँ आती हैं कि उसे पुनर्विवाह करना पड़ता है। भूमन्यू नामक बुरी नजर रखनेवाले युवक से बदला लेने के उद्देश्य से वह रुषकेतु नामक युवक का हाथ थाम लेती है।

रांगेय राघव ने उपन्यासों में विभिन्न नारी पात्रों को उकेरा है। 'मुर्दों का टीला' में वेणी भी अद्वितीय नारी पात्र है। वह एक कुशल नर्तकी है। कथानक को गढ़ते समय रांगेय राघव उस काल व पात्र को जीते हैं। हर पात्र स्वयं जी उठते हैं। वेणी को कितना कुछ सहना पड़ता है। वह मणिबन्ध नामक युवक के धन के प्रति आकर्षित होकर अपने पूर्व प्रेमी की हत्या करना चाहती है, लेकिन यह निर्णय उसका स्वयं का नहीं होता है। जब उसे मणिबंध धोखा देता है तब वह वापस अपने पुराने प्रेमी के पास नहीं जा सकती, तब उसकी बेबसी उसे नोचती है। वह अपना सब कुछ खोकर भी कुछ नहीं पा सकती।

'अंधेरे की भूख' में सिंधुजा मानसिक रोगी है। वह स्वयं को भूतनी समझती है। अपनी पीड़ा स्वयं के पिता से भी नहीं कह पाती। 'देवकी का बेटा' उपन्यास में रांगेय राघव ने यशोदा के मातृरूप को बहुत ही सरल व तरल भाव से उकेरा है। देवकी को भी संवेदनाओं की श्रेणी में रखते हुए चित्रित किया गया है। भगवान श्रीकृष्ण की माताओं का हूबहू स्वरूप को साकार करने में रांगेय राघव ने समुचित रूप से स्वयं को हर पात्र तथा कथानक में झोंक दिया है।

रांगेय राघव ने उपन्यासों के नारी पात्रों को भले ही कल्पना से जोड़े हो, पर सोचने व चिंतन करने पर विवश करते हैं। नारी विमर्श की दृष्टि से उनके उपन्यास आज भी प्रासंगिक हैं। ☆

आलेख

बंगाल का भीषण अकाल : 'तूफानों के बीच'

- ऊर्मिला कुमारी

सहायक प्राध्यापक, अन्नदा महाविद्यालय, हजारीबाग, झारखंड-825301

हिंदी साहित्य की गद्य विधाओं में रिपोर्ताज लेखन एक नवीन प्रणाली है। अतः अन्य गद्य विधाओं की अपेक्षा यह सीमित है। स्वाधीनता पूर्व राष्ट्रीय परिवेश में चित्रण से रिपोर्ताज का आरम्भ हुआ। हिंदी साहित्य में शिवदान सिंह चौहान द्वारा 1904 में लिखित 'मौत के खिलाफ जिंदगी की लड़ाई' प्रथम रिपोर्ताज के रूप में जाना जाता है।

रिपोर्ताज का विकास रूस में हुआ। द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात पश्चिमी देशों में रिपोर्ताज विधा खूब प्रचलित हुई। रूसी एवं अंग्रेजी साहित्य में इस समय बहुत रिपोर्ताज लिखे गए। महादेवी वर्मा का कहना है कि - 'रिपोर्ट या विवरण से संबंध रिपोर्ताज समाचार युग की देन है और उसका जन्म सैनिक की खाइयों में हुआ है।'

हिंदी साहित्य कोष में रिपोर्ताज को इस प्रकार परिभाषित किया गया है - 'रिपोर्ट के कलात्मक और साहित्यिक रूप को ही रिपोर्ताज कहते हैं।' स्वतंत्रयोत्तर भारत में अनेक घटनाएँ घटित हुई जो लेखकों को रिपोर्ताज लिखने को बाध्य किया। भारत-पाक विभाजन, बंगाल के नोआखाली अत्याचार, भारत-पाकिस्तान युद्ध, भारत-चीन युद्ध से संबंधित रिपोर्ताज लिखे गए। इसके अलावा भारत पर आई विभिन्न आपदाएँ-बाढ़, सूखा, अकाल, अग्नि कांड, आतंकवाद तथा भूकम्प आदि से सम्बंधित रिपोर्ताज लिखे गए। वर्तमान में साहित्यिक गोष्ठियों एवं सम्मेलनों आदि के आधार पर लिखे गए रिपोर्ताज पत्र-पत्रिकाओं में छपते हैं। रिपोर्ताज के विशेष शैली का उपन्यासों में प्रयोग हो रहा है। अर्धशताब्दी पार करने के बावजूद परिणाम तथा गुणवत्ता की दृष्टिकोण से रिपोर्ताज विधा को पूर्णता प्राप्त नहीं हुई है। फिर भी इसका भविष्य उज्ज्वल है। 'साहित्यकार की संवेदनशीलता बढ़ जाने पर उसकी रिपोर्ताज लेखन शैली सशक्त एवं प्रभावोत्पादक हो जाती है, युद्ध की विभीषिका, दुर्भिक्ष की भयंकरता या एवं समाज को प्रभावित करने वाली हृदय विदारक घटना के घटित होने पर रिपोर्ताज लेखक घटना के वैविध्य को रिपोर्ताज शैली का रूप देकर पाठक के समक्ष ऐसे प्रस्तुत करता है कि उसका दिल दहल जाता है।हिंदी में रिपोर्ताज परंपरा का प्रारंभ 1938 में 'रूपाभ' में प्रकाशित शिवदान सिंह चौहान की रचना 'लक्ष्मीपुरा' से माना जाता है। कन्हैया लाल मिश्र 'प्रभाकर' का नाम भी उल्लेखनीय है जिनका संकलन 1953 में 'क्षण बोले कण मुस्काए' प्रकाशित हुआ था।

रांगेय राघव ने प्रथम रिपोर्ताज 'अदम्य जीवन' लिखा जिसका प्रकाशन 'विशाल भारत' पत्रिका में हुआ। यह संकलन सन 1943-44 के बंगाल दुर्भिक्ष महामारी के विषय के अनेक मार्मिक रिपोर्ताज का संकलन है। रांगेय जी का अन्य रिपोर्ताज ग्वालियर में सांप्रदायिक दंगों, दमन नीति, अत्याचारों तथा हृदयहीनता से संबंधित है। रांगेय राघव द्वारा लिखित रिपोर्ताज 'तूफानों के बीच' हिंदी साहित्य की एक अनमोल कृति है जो चार भागों में

लिखा गया है - बांध भाँगे दाओ, एक रात, मरेंगे साथ जियेंगे साथ और अदम्य जीवन। सन 1942-44 के बीच लिखा गया यह रिपोर्ताज बंगाल के अकाल की भयावहता का साक्षी है, जिससे लेखक के मन की संवेदनशीलता तथा व्याकुलता प्रकट होती है। उस समय प्रगतिशील लेखक संघ द्वारा प्रेषित दल डॉ. कुण्ठे के प्रतिनिधित्व में बंगाल गया। इस दल के साथ 19 वर्षीय रांगेय राघव एक पत्रकार के रूप में गए थे। संवेदनशील प्रकृति के रांगेय राघव ने बंगाल के लोगों की दुखभरी त्रासद स्थिति से पाठकों को अवगत कराया है। उन लोगों की दुःखद और मार्मिक बातें लेखक के अंतर्मन पर गहरा असर डालता है। लेखक ने इस अकाल के तत्कालीन समाज पर सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक रूप से पढ़ने वाले विपरीत असर का आंकलन किया है। इस दुर्भिक्ष के कारण अकाल मृत्यु को प्राप्त नीरव ग्रामों में जीवित रह गए लोगों की भावनाओं और पीड़ा से लेखक ने परिचित कराया है। उन्होंने रिपोर्ताज की भूमिका में लिखा है -'बंगाल का अकाल मानवता के इतिहास का बहुत बड़ा कलंक है। शायद क्लियोपेट्रा भी धन के वैभव और साम्राज्य की लिप्सा में अपने गुलामों को इतना भीषण दुख न दे सकी जितना आज एक साम्राज्य और अपने ही देश के पूँजीवाद ने बंगाल के करोड़ों आदमी, औरतों और बच्चों को भूखा मारकर दिया है।'

'बांध भांगे दाओ' रिपोर्ताज के आरंभ में लेखक ने नदिया जिले के कुश्टिया कस्बे में अकाल की भयावहता का सजीव वर्णन किया है जहाँ लोगों को खाना दुर्लभ था। असहायता और विवशता के कारण मानवता कराह उठी थी और लोगों में अपराध बढ़ गए थे। अपने परिवारों को पुरुष उनके हाल पर छोड़कर चले गए थे। भूख से बच्चे-बड़े मर रहे थें। स्त्रियाँ पैसों की खातिर देह बेचने को विवश थीं। उन मजबूर औरतों की निगाहें मानो पूछती सी प्रतीत होती थी कि-'क्या हमें मर जाना चाहिए था ?'

'अदम्य जीवन' तूफानों के बीच मूल संवेदना का वाहक रिपोर्ताज है जिसमें लेखक ने मृत्यु, भूख, महामारी से जूझते व्यक्ति की दारुण दशा का चित्रण किया है। संकट की घड़ी में नैतिक मान्यताओं के स्खलन की ओर संकेत किया गया है। चोर-बाजारी-मुनाफाखोरी के रूप में व्यक्ति का संकुचित स्वार्थ किस तरह सब कुछ निगलने को तत्पर था, इसी की जीवंत प्रस्तुति है- अदम्य जीवन।

लेखक की संवेदना इन शब्दों में व्यक्त होती है -'लोग घर में मरते थे। बाज़ार में मरते थे। जैसे जीवन का अंतिम ध्येय मुट्ठी भर अन्न के लिए तड़प-तड़पकर मर जाना ही था। बंगाल का सामाजिक जीवन कच्चे कगार पर खड़ा होकर काँप रहा था। और वही लोग जो अकाल के ग्रास बन रहे थे, मरने के बाद पथों पर भीषणता के पगचिहन् बने सभ्यता पर, मानवता पर अट्टहास सा कर उठते थे। ऐसी स्थिति में भी लेखक ने लोगों में अद्भुत जिजीविषा देखी है। एक युवा के संकल्प को उन्होंने उद्धृत किया है -'यह अकाल जो गुलामी है, जो एक भीषण आक्रमण है, उसे हमे आस्तीन के सांप की तरह कुचलकर खत्म कर देना होगा।'

उस अकाल में बंगाल में फैली बीमारियाँ- मलेरिया, चेचक, और चर्मरोग आदि से लोग मर रहे थे, किंतु प्रशासन द्वारा इन पर कोई ध्यान नहीं दिया जा रहा था। लोगों को सरकारी दवाईयाँ नहीं मिल पा रही थीं, वे लोग

इलाज के अभाव में मौत के मुँह में जा रहे थे। इस अकाल के समय प्रशासन की स्वार्थपरता तथा लाभ से प्रेरित राजनीति के चेहरे को भी उजागर किया है। सरकारी दवाखाने में समुचित दवाईयाँ न होने के बावजूद प्रशासन का दावा था कि उन्होंने 75 फीसदी लोगों की सेहत सुधारी है। टेक्सटाइल मिल बंद हो जाने के बाद भी सरकार ने 3500 मजदूरों की कोई सुध न ली। किसानों को बीज नहीं मिल पा रहा था। चावल का दाम अत्यधिक बढ़ गया था। रांगेय राघव समाज की इस स्वार्थपरता से उद्विग्न हो उठते हैं -'क्यों नहीं समझता मनुष्य अपना स्वार्थ जो सबका स्वार्थ हो? क्यों वह परंपरा से स्वार्थ को संकुचित रूप में बाँधता है?'

बंगाल के अकाल में भयावहता अपने चरम पर था। शिद्धिरगंज बस्ती में कोई घर न बचा था। वहाँ घास-पात के बीच केवल मिट्टी के ढूह बचे थे। एक पेड़ की छाया में चौदह कब्रें थीं। वहाँ की स्थिति से आदी हो चूका एक लड़का विरक्त भाव से चिल्लाता है -'बाबू एक एक में दो-दो, तीन तीन हैं।'

उस समय रोजाना तीस से चालीस लोग मर रहे थें। कपड़े बनाने वाले ढाका के जुलाहों के पास तन ढकने को कपड़े नहीं थे। कुछ लोग दिन में एक वक्त शकरकंद खाकर जी रहे थे। लँगरखाने में भी पर्याप्त भोजन न था। लोगों ने भूख मिटाने के लिए घरों के टीन की छतें बेच दी थी। जगह-जगह पर मिट्टी के कब्रों के टीले से बन गए थे। बिना कफ़न के लोग एक पर एक दफनाए जाते थे। कब्रें इतनी हो गई थी कि लोग कब्र पर ही चलकर जाते थे। अदम्य जीवन में वर्णित यथार्थ अत्यंत भयावह है। मृत्यु इस यथार्थ का सबसे बड़ा सच है। गाँव की सीमा आरंभ होने से पहले ही कब्रें दिखने लगतीं- 'फोड़ों की तरह वे कब्रें जगह जगह सूजी हुई सी दिखाई दे रही थीं।'

रिपोर्ताज अदम्य जीवन केवल एक भयावह व त्रासद स्थिति का चित्रण मात्र नहीं है। जनता के प्रति रांगेय राघव की सच्ची संवेदनशीलता, सहानुभूति तथा झुकाव इस रिपोर्ताज को राजनीतिक, समाजिक और आर्थिक व्यवस्था के खिलाफ एक सक्रिय हस्तक्षेप बनाती है। भूख, मृत्यु, रोग के बावजूद लेखक को पूर्ण विश्वास है कि बंगाल मर नहीं सकता -'जहाँ भूख और बीमारियों से लड़कर भी मनुष्य के बालकों में क्रांति को चिरजीवी रखने का अपराजित साहस है, वह राष्ट्र कभी मर नहीं सकेगा।' लेखक की मनुष्यता में गहरी आस्था है। दुख, अत्याचार, भूख के भीतर भी लेखक ने मनुष्यता की अजस्र धारा का संचार देखा है। 'युग युग तक संसार को याद रखना पड़ेगा कि एक दिन मनुष्य के स्वार्थ और असाम्य के कारण, गुलामी और साम्राज्यवाद शासन के कारण बंगाल जैसी शस्य श्यामला भूमि में मनुष्य को भूख से दम तोड़ना पड़ा था। और लोगों ने उसे पूरी शक्ति से इसलिए झेला था कि मानवता जीवित रहना चाहती थी। उसे कोई मिटा नहीं सकता।'

'रांगेय राघव ने सच्ची पत्रकारिता का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए उस संकट की स्थिति में प्रशासन की स्वार्थपरता, गरीब मजदूरों, किसानों और जनजीवन के प्रति असंवेदनशीलता को उजागर किया है।' रिपोर्ताज लेखक अपराजेय सामर्थ्य के रचनाकार हैं। समीक्षकों ने उन्हें प्रगतिशील लेखक कहा है किंतु वे सच्चे अर्थों में मानवतावादी रचनाकार हैं। 'तूफानों के बीच' रिपोर्ताज की अनुभूति बंगाल की जनता की भूख, रोग और मृत्यु की पीड़ा व करुणा को पाठक के समक्ष जीवंत करती है। अकाल में मनुष्य मुट्ठीभर अनाज के लिए हर मूल्य

चुकाने को तैयार रहता है। चाहे वह नैतिक हो, आर्थिक हो या शारीरिक संघर्ष या यातना हो, अपनी अपराजेय शक्ति का परिचय देता है। यह रिपोर्ताज समस्त यथार्थ का प्रामाणिक दस्तावेज है। लेखक बंगाल के अकाल को देश की स्वाधीनता से भी जोड़कर देखते हैं। उनका मानना है कि भुखमरी की समस्या स्वतंत्र्योत्तर समस्या भी हो सकती है। लेखक के अनुसार पराधीनता एवं जनशक्ति युग के दो बड़े सच हैं। वे अंग्रेजी शासन और पूँजीपतियों के प्रति अपना आक्रोश व्यक्त करते हैं।

निष्कर्षतः रांगेय राघव का रिपोर्ताज 'तूफानों के बीच' हिंदी साहित्य का अनमोल संग्रह है जिसमें बंगाल के भीषण अकाल के कारण जनजीवन में उत्पन्न दारुण स्थिति का अत्यंत मार्मिक वर्णन किया गया है। अंग्रेजों तथा पूँजीपतियों के साठ-गाँठ को उसके लिए उत्तरदायी माना है। उन्होंने अकाल के फलस्वरूप विविध समस्याओं से जूझते हुए मनुष्य की संघर्षशील जिजीविषा का साक्षात्कार किया है। रिपोर्ताज को चिरस्थाई रचना बनाने में लेखक की मानवतावादी दृष्टि का विशेष महत्व है क्योंकि इस अकाल में लेखक आम आदमी की पीड़ा का द्रष्टा एवं भोक्ता दोनों है। इस रिपोर्ताज में लेखक को मनुष्य की मनुष्यता में अटूट आस्था है। यहाँ अभिव्यक्त रांगेय राघव की जीवनदृष्टि इस रिपोर्ताज को एक अविस्मरणीय कृति बना देती है। अतः इस रचना में एक तरफ अकाल की त्रासदी पर विचार किया गया है तो दूसरी तरफ बंधुत्व तथा करुणा जैसे शाश्वत जीवन मूल्यों की जीवंत प्रस्तुति हुई है। ☆

✶ मेरा मत है कि गोरखनाथ ने मनुष्य-समाज को बहुत बड़ी देन दी है। गोरखनाथ ने योग को लोक के पास लाना चाहा, तभी एकांत साधना न करके वे संप्रदायों को शुद्ध करते रहे, संगठन करते रहे। यह और बात है कि वे अतिवादी थे। अतिवाद तो अतिवाद की प्रतिक्रिया थी। परंतु गोरख ने यह प्रमाणित किया कि योग-मार्ग का प्रयोग समाज के लिए होना चाहिए। प्रश्न यह उठता है कि क्या उनका योग व्यक्तिपरक नहीं है? है, अवश्य है। परंतु वे मध्यकालीन व्यक्ति थे।

✶ गोरख की कविता एक अलंकार-मात्र नहीं है, वह मनुष्य को ऊपर उठने की प्रेरणा देती है। सहमत न होकर भी मनुष्य यह अनुभव करता है कि बात ऊपरी नहीं है, उसके पीछे एक प्रेरणा है, विश्वास है और वह विश्वास किसी का जीवित विश्वास है, जिसने कहनेवाले में अपार शक्ति भर दी है।

– रांगेय राघव

మాతృదినోత్సవం సందర్భంగా

అమ్మ: అమృత కలశమ్

వ్యాసము

- రాధాకృష్ణ మిరియాల
డోర్ నం.6-2-959, దక్షిణ భారత హిందీ ప్రచార సభ ఆంధ్ర,
ఖైరతాబాద్, హైదరాబాద్ - 500004.

మాటలకు అందని 'అమ్మ' మగురించి ఎంత చెప్పినా ఇంకా మిగిలిపోతుంది ఆమె ప్రేమలా!

అమ్మ...! ఆ పదంలో ఆప్యాయత, అనురాగం, ఆనందం, ఆత్మీయత, ఆదర్శం, కమ్మదనం, తీయదనం ఇంకా ఎన్నెన్నో... ఎంత చెప్పినా తక్కువే.. అనురాగంలోని మొదటి అక్షరాన్ని మమకారంలోని మొదటి రెండక్షరాల్ని పెనవేసే బంధం అమ్మ. మాటలకు అందనిది అమ్మ ప్రేమ. అమ్మ.. పేరులో ప్రేమని.. పిలుపులో మాధుర్యాన్ని నింపుకున్న అమృత మూర్తి అమ్మ. అమ్మ ప్రేమ అంత తీయన కనుకే ఆ భగవంతుడు తనకు కూడా అమ్మ కావాలనుకున్నాడు. ఈ లోకాన్ని సృష్టించిన ఆ దేవాది దేవుడు కూడా అమ్మ కడుపునే పుట్టాడు. అంత గొప్పది అమ్మ. అమ్మ ప్రేమ గురించి ఎంత చెప్పినా తక్కువే. అమ్మను ఎంత పొగిడినా తక్కువే. త్యాగమూ, ప్రేమా కలిస్తే అందులో నుంచి అమ్మే పుట్టుకొస్తుంది. అమ్మకు ప్రత్యామ్నాయం లేదు. అమ్మ ఉన్న చోట అదృష్టం పురి విప్పి ఆడుతుంది అనడంలో అతిశయోక్తి లేదు. కడుపులో నలుసు పడిన నాటి నుంచి నవ మాసాలు ఎన్నో సంఘటనలు ఎదుర్కొని తన రక్త మాంసాలు పంచి అమ్మ పునర్జన్మనెత్తుతూ బిడ్డకు జన్మనిస్తుంది. పొత్తిళ్లలో పసికందును చూసి ప్రసవవేదనను మరిచిపోతుంది.

విశ్వ నిర్వహణ శక్తిని జగన్మాతగా దర్శించి, వేద పురాణాగమాలు ఆ శక్తి తాలూకు వివిధ కోణాలను వివిధ రూపాలుగా ఆవిష్కరించాయి. వాటి ఉపాసనా విధులను ఏర్పరచాయి. ఆ పద్ధతిలో 'సప్త మాతృకా' తత్వం ఒకటి. శుంభ నిశుంభాది అసురులను శ్రీఅమ్మవారు సంహరిస్తున్న సమయంలో, భయంకరమైన అసుర సేనల్ని నిర్మూలించడానికే బ్రహ్మాది దేవతల్లోని శక్తులు మూర్తులు ధరించి వచ్చినట్లుగా 'దేవీ మహాత్మ్యం' వర్ణించింది. 1. బ్రహ్మలోని శక్తి 'బ్రాహ్మి', 2. విష్ణుశక్తి 'వైష్ణవి', 3. మహేశ్వరుని శక్తి 'మహేశ్వరి', 4. స్కందుని శక్తి 'కౌమారి', 5. యజ్ఞ వరాహస్వామి శక్తి 'వారాహి', 6. ఇంద్రుని శక్తి 'ఐంద్రి', 7. అమ్మవారి భ్రూమధ్యం (కనుబొమల ముడి) నుంచి ఆవిర్భవించిన కాలశక్తి 'కాళి' (చాముండా). వీటిని 'సప్త మాతృకలు' అంటారు. ఈ శక్తులు విశ్వాన్ని నిర్వహించే ఏడు రకాల మహా శక్తులు. ఆధ్యాత్మిక సాధనలోని పురోగతి క్రమంలో మనలో జాగృతమయ్యే శివ శక్తులు. నిజానికి ఒకే శక్తి తాలూకు వివిధ వ్యక్తీకరణలు. మొత్తంగా పరిశీలిస్తే 1.విశ్వాన్ని నడిపే శక్తులు. 2.యోగసాధనవల్ల మనలో మేల్కొనే దివ్యశక్తులు- వీటినే విభిన్న శక్తిరూపాలుగా పురాణాదులు ఆవిష్కరించాయని స్పష్టమవుతోంది. ఈ సర్వశక్తుల సమన్వయ రూపిణి, అమ్మలగన్న యమ్మ ముగ్గురమ్మల మూలపుటమ్మ శ్రీజగన్మాత అయితే, వర్తమాన పరిస్థితులలో సమస్తం అమ్మే అనేది ప్రస్ఫుటం.

బ్రహ్మ సృష్టించిన వాటిలో అమ్మను మించిన అపురూపం లేదు.

అమృతం ఎలా ఉంటుందో తెలియదు గాని అమ్మ ప్రేమ ముందు అది దిగదుడుపే. ఆమె ప్రేమ ఈ ప్రపంచాన్నే మరిపింపజేస్తుంది. ఆ పదానికి అంతటి మహత్మ్యం ఉంది. అంతేకాదు దేవుడు అన్ని చోట్ల తాను ఉండలేక, అమ్మను సృష్టించాడంటారు. ఈ విషయం తెలుసుకోని మనం జన్మనిచ్చి, ఇంతటి వారిని చేసిన దేవతను కళ్ల ముందు ఉంచుకుని, కనిపించని ఆ దేవుడు కోసం గుళ్లు, గోపురాల చుట్టూ తిరుగుతాం.

బ్రహ్మదేవుడు సృష్టించిన వాటిలో అమ్మను మించిన అపురూపం లేదు. వాస్తవానికి బ్రహ్మ అమ్మను సృష్టించలేదు. అమ్మే బ్రహ్మను సృష్టించింది. అమ్మ లేనిదే బ్రహ్మ ఎక్కడి నుంచి పుట్టాడు? మన భారతీయ సమాజం సైతం 'మాతృదేవోభవ, పితృదేవోభవవ' అంటూ అమ్మకే అగ్రతాంబూలం ఇచ్చింది. ప్రపంచంలో ఎన్నో భాషలు, జాతులు, సంస్కృతులకు చెందిన వారు నివసిస్తున్నా, అమ్మ ప్రేమ అంతటా ఉంటుంది. అది ఎన్నటికీ మారదు. ఎప్పటికీ ఒకేలా ఉంటుంది. మనకు ఏ చిన్న బాధ కలిగినా అమ్మనే తలుచుకుంటాం. నాన్నా అని అనం. అలా అని నాన్న ఏం చెడ్డవాడు కాదు. అమ్మ స్థానం అంత గొప్పది. అమ్మ అంటే ఓ అనుభూతి... ఓ అనుబంధం... ఓ ఆప్యాయత...ఓ ఆత్మీయత. అందుకేనేమో కనిపించని దేవుడైనా.. కనిపెంచిన నీ తర్వాతే అమ్మా అనిపిస్తుంది. అలాంటి అమ్మ విలువ ఎంత అంటే పంచ భూతాలు సైతం చెప్పలేనంత . ముక్కోటి దేవతలు సైతం శిరసు వంచి నమస్కరించేంత. కుభేరుడు సైతం లెక్క కట్టలేనంత. అలాంటి అమ్మ ప్రేమ పొందని బ్రతుకు వ్యర్థం. అమ్మ ఒడి భూతల స్వర్గం. ఒకప్పుడు ఇంటికే పరిమితమైన అమ్మ కాలం తో పాటు తన బిడ్డల కోసం బహుముఖ పాత్రలను పోషిస్తుంది. ఈ సందర్భంలోనే పట్టుపరుపేలనే పండువెన్నెలేలనే అమ్మ ఒడి చాలునే నిన్ను చల్లంగ జోకొట్టునే నారదాదులేలనే నాదబ్రహ్మలేలనే అమ్మ లాలి చాలునే నిన్ను కమ్మంగ లాలించునే. అంటూ వేటూరి సుందర రామమూర్తి గారి మాట గుర్తుకొస్తుంది. అందుకే భారతీయ సంస్కృతి తల్లికి అగ్రస్థానం ఇచ్చింది. యుగాలతో సంబంధం లేకుండా స్వచ్ఛమైన ప్రేమను అందించటం ఆమెకు మాత్రమే సాధ్యం. తల్లి ఒడినే బడిగా, గుడిగా చేసుకొని తొలి పాఠాలు నేర్చుకుంటారు. పది మంది ఉపాధ్యాయులు ఒక ఆచార్యునితో సమానం. వందమంది ఆచార్యులు ఒక తండ్రితో సమానం. వెయ్యిమంది తండ్రులు ఓ తల్లితో సమానమని మన పెద్దలు చెబుతారు. మనిషి ఎంత ఎదిగినా అస్థిత్వాన్నిచ్చిన అమ్మను మరువలేడు. కుటుంబాలలో అనేక పాత్రలున్నా, బంధాలున్నా వాటన్నింటికీ ఆధారం అమ్మ. కాలాలు ఎన్ని మారినా పాశ్చాత్య పోకడలు ఎన్ని పొంగి పొరలి వచ్చినా తల్లి స్థానం చెక్కు చెదరదు.

కార్యేషు దాసి.. కరణేశు మంత్రి.. భోజ్యేషు మాత... ఇలా సమస్తం...అమ్మే !!!

భూమీ, ఆకాశం, నదీ, సముద్రం, చెట్టూ, పువ్వూ అన్నీ మాతృ స్వరూపాలే. ఆమె లోకానికి రూపు లేదు. అనంతమైన వాత్సల్యానికి నిర్వచనమే మాతృత్వం. లోకంలోని ప్రతిది మాతృస్వరూపమే. అందుకే ఆమెని ఆరాధనాభావంతో ఆదరించి గౌరవించాలి. ఆమె అంటే విద్యాలయం. ప్రవాహాల నదిలా, పరుగెత్తే వాగులా, ప్రశాంత సాగరంలా, కల్లోల కడలిలా అనేక అవతారాలనెత్తుతుంది. పరిస్థితులకనుగుణంగా ఒదిగిపోయే శక్తి కేవలం ఆమెకు మాత్రమే సొంతం. అమ్మంటే.. ఓర్పు.. నేర్పు. జీవన ఒరవడిని నేర్పే మహత్వం. అలుపెరుగని శ్రమతో, కష్టాలను కనపడనీయని కరుణతో, కొలమానమే లేని అసమానతల నడుమ అపురూపమైన అనురాగంతో నిత్యం అలలారే అమ్మ తత్త్వం గురించి ఎంత చెప్పినా తక్కువే. కరుడుగట్టిన హృదయాలను సైతం కరిగించే గుణం అమ్మ గుణం. అమ్మంటే ఔన్నత్యం. అమ్మంటే ఆలంబన. అమ్మంటే అనురాగం. అందుకేనేమో అమ్మ గురించి ఎంత చెప్పినా ఇంకా మిగిలిపోతూనే ఉంటుంది ఆమె ప్రేమలా. ఎప్పుడూ మన గురించే ఆలోచన. మనమీదే ధ్యాస. కనులు తెరిచిన క్షణం నుంచి.. బంధం కోసం బాధ్యత కోసం.. కుటుంబం కోసం.. అందర్నీ కనుపాపలా తలచి, ఆత్మీయత పంచి, తనవారి కోసం అహర్నిశలు కష్టించి, వారిని సహించి, వారి భవిష్యత్తు గురించి, తన ఇంటిని నందనవనం చేసేది అమ్మ. అన్నం కలిపి గోరు ముద్ద పెట్టేప్పుడు ప్రేమ కూడా కలిపి పెడుతుంది. ఆ బిడ్డ ఎంతో ఇష్టంగా ఆ ముద్దలు తింటుంటే... ఆ బిడ్డ కడుపు నిండుతుందో లేదో కానీ, ఆ తల్లి కడుపు ఆనందంతో నిండిపోతుంది. బిడ్డకు బాధ కలిగిందన్న విషయం మన కంటే ముందు అమ్మకే తెలుస్తుంది. ఆకలి అవుతుందన్న విషయం మనకంటే ముందే అమ్మే పసిగడుతుంది. తన బిడ్డ విజయాలు సాధించినప్పుడు అమ్మ ఆనంద పరవశురాలవుతుంది... అందుకే అమ్మ పిచ్చి తల్లి. మనం తిరిగి తిరిగి ఇంటికి వెళితే గుమ్మంలోనే మన కోసం కళ్లల్లో వత్తులు వేసుకొని ఎదురుచూస్తుంది.... ఏం నాన్నా ఇప్పటిదాకా తిరిగితే ఆరోగ్యం

ఏమైపోతుంది..రా.. ఓ ముద్ద తిందువుగాని అంటుంది తప్ప, అర్ధరాత్రిదాకా ఎక్కడ తిరిగొస్తున్నావురా అని ప్రశ్నించదు. అందుకే అమ్మ ఓ అమాయకురాలు. పరీక్షల్లో ఫెయిలైతే నాన్న మనల్ని తిడుతుంటే, అమ్మ మనల్ని వెనకేసుకు వస్తుంది. ఈసారి కాకపోతే వచ్చేసారి మంచి ర్యాంక్ వస్తుందిలే అని అమ్మ మనవైపు ఉండి పోరాడుతుంది. ఇష్టమైనవి కొనాలన్నా, చిరుతిండి తినాలన్నా, పాకెట్ మనీ కావాలన్నా, అవసరం అయితే మనం ముందుగా అమ్మ వద్దకే వెళతాం. అమ్మ తన వద్ద డబ్బు లేకపోయినా నాన్నతో మాట్లాడి ఏదోలా మనకు పాకెట్ మనీ ఇస్తుంది. అదీ.. అమ్మకు తన బిడ్డల పట్ల ఉండే ప్రేమ. అందుకే అమ్మ మనకు కంచుకవచం. అందుకే అమ్మ ఓ గొప్ప స్నేహితురాలు. అమ్మ కంటికి మనం చాలా అందంగా కనిపిస్తాం. అందుకే అమ్మ ఓ ఐ స్పెషలిస్ట్. ప్రపంచంలో అతి పేదవాడు ధనం లేని వాడు కాదు అమ్మ లేనివాడు. అమ్మ ప్రేమ దక్కినవాడు అత్యంత కోటీశ్వరుడు. బిడ్డను ప్రేమగా చూసే ప్రతి తల్లి మదర్ థెరిసాయే.

నడకే కాదు నాగరికతనూ నేర్పిస్తుంది అమ్మ. అంతులేని ప్రేమానుగారాలకు, ఆప్యాయతకు మారు పేరైన తల్లి ఎవరికైనా ప్రత్యక్ష దైవమే. ఆప్యాయంగా అమ్మ కళ్ళలోకి ఒక్కసారి చూస్తే సమస్త లోకాలు కనిపిస్తాయి.

ఇక తెలుగు కవులెందరో అమ్మను గురించి తమదైన శైలిలో లిఖించి తమ కమ్మని పలుకులు పలికారు.

అమ్మ అన్నది ఒక కమ్మని మాట అది ఎన్నెన్నో తెలియని మమతల మూట
దేవుడే లేడనే మనిషున్నాడు, అమ్మే లేదనువాడు అసలే లేడు
తల్లి ప్రేమ నోచుకున్న కొడుకే కొడుకు, ఆ తల్లి సేవ చేసుకొనే బ్రతుకే బ్రతుకు
అమ్మంటే అంతులేని సొమ్మురా, అది యేనాటికి తరగని భాగ్యమ్మురా
అమ్మ మనసు అమృతమే చిందురా అమ్మ ఒడిలోన స్వర్గమే ఉందిరా
అంగడిలో దొరకనిది అమ్మ ఒక్కటే, అందరికీ ఇలవేలుపు అమ్మ ఒక్కటే

అమ్మ ఉన్న ఇంటిలో లేనిది ఏదీ...... అంటూ దాశరధి కృష్ణమాచార్యులు గారు రచించిన పాట విన్నపుడల్లా ఆయన కవితా శైలికి, వారి యొక్క ఆ విద్వత్తుకీ మాత్రమే కాక సరస్వతీ కటాక్షంతో కనిపించే ఆయన చరణ కమలములకీ సాష్టాంగ నమస్కారం చేయాలనిపిస్తుంది. అమ్మంటే తెలుసుకో, జన్మంతా కొలుచుకో అని ఒకరు, ఎవరు రాయగలరూ అమ్మా అను మాట కన్న కమ్మని కావ్యం.. ఎవరు పాడగలరూ అమ్మా అనురాగం కన్నా తీయని రాగం ం అని రాయలేరంటూ సిరివెన్నెల సీతారామ శాస్త్రి అమ్మ గొప్పదనాన్ని తన పాట ద్వారా వ్యక్తం చేశారు. డా. సి. నారాయణ రెడ్డి గారన్నట్లు అమ్మను మించి దైవం ఉందా? అవును మరి అవతారమూర్తి కూడా అమ్మకు కొడుకే కదా.

ఈ మధ్యన తరిగొప్పుల వి ఎల్ ఎం మూర్తి గారి కరకమలములతో విరచితమైన కథనం ఒక వార్తా పత్రికలో ప్రచురితమైనది. అందులో వారు అమ్మదనానికి మెచ్చు తునక అంటూ ఒక యదార్ధ సంఘటనను మనందరి ముందు ఉంచారు. అదేంటంటే హృదయం వున్నప్రతి ఒక్కరినీ కదిలించే ఈ ఘటన చైనాలో జరిగింది. చైనాలోని ఓ టీవీ చానల్‌లో పనిచేస్తున్న 26ఏళ్ళ క్యూ యువాన్ గర్భం దాల్చింది. ఆమెకు కేన్సర్ చివరి దశలో వున్నట్లు వైద్య పరీక్షలలో తేలింది. ఆ వ్యాధికి చికిత్స కిమోథెరపీ మాత్రమే. అత్యంత శక్తిమంతమైన ఆ చికిత్స చేస్తే కడుపులో పెరుగుతున్న బిడ్డ ప్రాణాలకు ప్రమాదం. ఒకవైపు కేన్సర్ తనను కబళిస్తున్నా, బిడ్డ పుట్టేవరకు కీమోథెరపీ మాత్రం తీసుకునేది లేదని నిక్కచ్చిగా చెప్పేసింది. ఆమెకు పండంటి కొడుకు పుట్టాడు. సరిగ్గా బాబుకు 100 రోజులు నిండేసరికి ఆ తల్లికి నూరేళ్లు నిండిపోయాయి. చైనాలో పిల్లలు పుట్టిన వందోరోజును చాలా ఘనంగా జరుపుకుంటారు. సరిగ్గా అదే రోజు ఆ తల్లి మరణించడం విధి విలాసమే! అమ్మదనం అంటేనే నిస్వార్ధ ప్రేమకు ప్రతిరూపం అన్న విషయాన్ని ఆమె తన అపూర్వ త్యాగంతో మరోసారి నిరూపించింది.

అమ్మ లేని క్షణం అంటే ఊహాతీతం. ఆక్షణం నవనాడులూ కుంగి పోయి, భూమి నిలువుగా చీలిపోయి అందులో చెప్పలేనంత లోతుకి వెళ్లి పోయినట్లనిపిస్తుంది. బిడ్డలకోసం తన జీవితమంతా ధారపోసే అమ్మకు మన ఏమిచ్చి ఋణం తీర్చుకోగలం. అందు కే ఆత్రేయ గారు ఒక సందర్భంలో అన్నారు. అమ్మ వంటిది అంత మంచిది అమ్మ ఒక్క టేనని..

నాస్తి మాతృ సమం దైవం

నాస్తి మాతృ సమః పూజ్యో

నాస్తి మాతృ సమో బంధు

నాస్తి మాతృ సమో గురు :

అమ్మతో సమానమైన పూజ్యులు గానీ దైవంగానీ లేరు

తల్లిని మించిన బంధువులు గానీ గురువులు గానీ లేరు

సంతోషం తన్నుకు వచ్చినా, దుఃఖం ముంచుకు వచ్చినా పిల్లలకైనా, పిల్లల్ని కన్న తల్లిదండ్రులకైనా ముందుగా గుర్తుకు వచ్చేది అమ్మ. అటువంటి అమ్మ కోసం అహర్నిశలు పరితపించడంలో ఆనందం ఉంది.

' ప్రపంచంలోని దేశదేశాల్ని చుట్టి, లక్షలాది మందిని కలిసినా అమ్మ వంటి అపురూప వ్యక్తి ఎక్కడా తారసపడలేదు. నేను సంపాదించిందంతా ఆమె చరణాల వద్ద పోసినా ఇంకా బాకీ పడతాను' అని అమ్మ మీద తనకున్న ప్రేమను చాటుకున్నాడు చార్లీ చాప్లిన్. అందు కే అమ్మకంటూ ప్రత్యేకంగా ఒక రోజు కావాలనుకున్నాడు.

"యా దేవీ సర్వ భూతేషు మాతృ రూపేణ సంస్థితా నమస్తస్యై నమస్తస్యై నమస్తస్యై నమో నమః"

మాతృదినోత్సవం అంటూ హడావుడి చేస్తూ తల్లులను ఈ ఒక్క రోజు మాత్రమే గుర్తుచేసుకుంటే చాలా? దండం పెట్టి, బహుమతి ఇస్తే మన బాధ్యత తీరిపోయినట్లేనా? ఒక్క రోజు ప్రేమ వద్దు .. అన్ని రోజులు అమ్మవే కావాలి తన పిల్లలు తన పట్ల ప్రేమ చూపిస్తే నెమలి సింహాసనం మీద కూర్చున్నంత , ఎవరెస్ట్ శిఖరాన్ని అధిరోహించినంత ఆనందపడుతుంది ఆ తల్లి. సంవత్సరానికి ఒక సారి కాళ్ళు మొక్కి సంవత్సరమంతా తిట్టే బిడ్డలు కాదు కావాల్సింది. అమ్మను గౌరవించే వాళ్ళు, ప్రేమించే వాళ్ళు కావాలి. ఏడాది కోరోజు కాదు అమ్మ కోసం కేటాయించాల్సింది. ప్రతి రోజు అమ్మ రోజే కావాలి. నిన్ను ప్రేమించిన అమ్మ ను నువ్వు ప్రేమిస్తే చాలు ఆ తల్లి ఆనందానికి అవధులు ఉండవు . తన పిల్లల ప్రేమ కోసం నిత్యం పరితపించే మనసు ఏదైనా ఉంటే అది తల్లి మనసే. అందు కే కాసింత ప్రేమ, అమ్మ అన్న గౌరవం ఉంటే చాలు . అమ్మలంతా సంతోషంగా జీవిస్తారు. ఈ రోజే కాదు ఏ రోజైనా అమ్మ రోజే కావాలి. అమ్మ మీద ప్రేమతో ప్రతి ఒక్కరూ మెలగాలి . మాతృ దినోత్సవం నాడే కాదు అమ్మ మీద ప్రేమ ప్రతి రోజూ ఉండాలి ఎందుకంటే అమ్మ ఎప్పుడూ ప్రత్యేకమే.

అమ్మకు ఎంత చేసినా ఆ రుణం తీర్చుకోలేం. మనకు జన్మనిచ్చి, పెంచి, సమాజంలో ఉత్తమ పౌరునిగా మార్చిన తల్లిపట్ల ఒక్క రోజు కృతజ్ఞత చూపితే చాలదు. మాతృమూర్తిని ప్రతిరోజూ గౌరవించాలి. బాగోగులను పట్టించుకోవాలి. ఎప్పుడూ సంతోషంగా ఉండేలా చూసుకోవాలి. అమ్మకు కేవలం ఒక రోజు అంటే, సముద్రమును ఒక చెంచాతో తోడేయాలని ప్రయత్నించే ఒక వృథా ప్రయాస. మనకు జన్మనివ్వడమే కాకుండా సమాజ నిర్మాణానికి దోహదకారి అయిన అమ్మను గౌరవించడం ప్రతి ఒక్కరి కర్తవ్యం. మరి ఈ కథనాన్ని చదివిన ప్రతి ఒక్కరూ అమ్మను ప్రేమిస్తూ, ప్రేమను పంచుతారని ఆశిస్తూ .....అమ్మలందరికీ శతకోటి పాదాభివందనములు తెలియజేసుకుంటున్నాను.

ప్రపంచంలో మనం అపురూపంగా చూసుకోవాల్సిన వ్యక్తి ఎవరైనా ఉన్నారంటే.. ఆ వ్యక్తి.. కేవలం అమ్మే..! ☆

गतिविधियाँ

विदाई एवं स्वागत समारोह

- हैदराबाद 29 अप्रैल, 2023

उच्च शिक्षा और शोध संस्थान, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, हदराबाद में 29 अप्रैल, 2023 को भारत रत्न डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर जयंती के उपलक्ष्य में विशेष व्याख्यान का आयोजन किया गया। साथ ही साथ पी.जी. विभाग के अंतिम वर्ष के विद्यार्थियों का विदाई समारोह एवं पीएच.डी. पाठ्यक्रम में प्रवेश प्राप्त शोधार्थियों का स्वागत समारोह मनाया गया। समारोह का शुभारंभ सभागार में स्थित महात्मा गांधी एवं सरस्वती देवी की मूर्ति के माल्यार्पण एवं दीप प्रज्वलन से हुआ।

दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, आंध्र प्रदेश एवं तेलंगाना के अध्यक्ष पी. ओबय्या ने अध्यक्षीय भाषण में पी.जी. विभाग में होनेवाले कार्यक्रमों की सराहना की एवं बाबा साहेब अम्बेडकर की विचारधारा को समाज एवं राष्ट्र के लिए उपयोगी बताया। मुख्य अतिथि के रूप में सेंट फ्रांसिस महिला महाविद्यालय की हिंदी विभागाध्यक्ष डॉ. सुरेखा चव्हाण ने 'डॉ. अंबेडकरवादी दर्शन एवं स्त्री' विषय पर सार गर्भित व्याख्यान प्रस्तुत किया। उन्होंने डॉ. बाबा साहेब के विचार, महिला सशक्तीकरण, स्त्री शिक्षा, महिला अधिकार आदि पर प्रकाश डाला।

समारोह में उपस्थित सभा के पदाधिकारी अब्दुल रहमान, मधुसूदन एवं शेख महमद खासिम ने सभा को संबोधित किया एवं बाबा साहेब के विचारों की महत्ता एवं उपयोगिता पर सभी का ध्यान आकर्षित किया तथा विद्यार्थियों को आशीर्वचन दिया। समारोह की संरक्षक प्रभारी सचिव एवं संपर्क अधिकारी ए. जानकी ने शुभकामनाएँ दी एवं शिक्षा महाविद्यालय के प्राचार्य डॉ. सी. एन. मुगुटकर ने विभाग की गतिविधियों के महत्त्व एवं उद्देश्य को बताया। शैक्षणिक वर्ष 2022-23 का वार्षिक प्रतिवेदन डॉ. शक्तीकुमार द्विवेदी ने प्रस्तुत किया। सांस्कृतिक प्रतियोगिता के प्रतिभागियों को प्रमाण पत्र एवं स्मृति चिह्न प्रदान किया गया। पीएच.डी. पाठ्यक्रम में प्रवेश प्राप्त नवागत शोधार्थियों का स्वागत एवं एम.ए. अंतिम वर्ष के विद्यार्थियों का विदाई समारोह संपन्न हुआ। समारोह के आरंभ में अतिथियों का स्वागत पी. जी. विभागाध्यक्ष प्रो. संजय एल. मादार ने किया। समारोह में पी.जी. विभाग की एसोसिएट प्रोफेसर डॉ. साहिरा बानू बी बोरगल एवं शिक्षा महाविद्यालय के प्राध्यापक गण, सभा के प्रबंधक एवं कार्यकर्ता उपस्थित रहे। कार्यक्रम का संचालन शोधार्थी नंदा सर्वे ने किया तथा आभार ग्रंथपाल डॉ. संतोष काम्बले ने व्यक्त किया ।

POST GRADUATE AND RESEARCH INSTITUTE

DAKSHINA BHARAT HINDI PRACHAR SABHA, MADRAS

Declared by Parliament as an Institution of National Importance by Act 14 of 1964

Accredited with 'B+' Grade by NAAC

All B.Ed./M.Ed. Colleges are Recognised by NCTE, SRC, NEW DELHI

ADMISSION NOTIFICATION 2023 – 2024

1. **B.Ed. (Hindi Medium) : Two Years :**

   ELIGIBILITY : (10+2+3 Pattern) Candidates with atleast 50% marks either in the Bachelor's Degree or any other qualification equivalent thereto, are eligible to seek admission as per the NCTE Norms.

2. **M.Ed. (Hindi Medium)** : **Two years** : Only at **Dharwad, Karnataka**

   ELIGIBILITY : (10+2+3+2 Pattern) Candidates with 50% marks in Courses like B.A./B.Ed., B.Sc./B.Ed., M.A./B.Ed., M.Sc./B.Ed., B.Ed. (Integrated) Courses. B.El.Edn. with Hindi as one of the subjects are eligible to seek admission as per the NCTE Norms.

   Relaxation for SC/ST/OBC/PWD and other categories in the percentage of eligibility condition for both B.Ed. and M.Ed. courses shall be as per the State Government rules.

   Admission is open in all the **11 B.Ed. Colleges** run by DBHP Sabha in the States : Tamil Nadu, Andhra Pradesh, Karnataka & Kerala. **Colleges at : CHENNAI, HYDERABAD, VIJAYAWADA, VISAKHAPATNAM, BANGALORE, BELGAUM, VIJAYPUR, DHARWAD, MYSORE, ERNAKULAM, NILESHWARAM.**

For Application and Prospectus : Rs. 600/-

Last date for submission of filled up Application : 30-08-2023

Applicants may contact directly to the concerned college.

Principal B.Ed., Chennai : 044-24341824- Extn, 123

Secretary, Andhra Branch : 040-23316865/23314949

Secretary, Karnataka Branch : 0836 – 2747763/2435495

Secretary, Kerala Branch : 0484 – 2377766/2375115

Duly filled–in application form shall be submitted to the concerned college Principals in the respective States.

Admission Application forms are available on Sabha's website : ***www.dbhpscentral.org***

REGISTRAR

POST GRADUATE AND RESEARCH INSTITUTE
DAKSHINA BHARAT HINDI PRACHAR SABHA, MADRAS
Declared by Parliament as an Institution of National Importance by Act 14 of 1964
Accredited with 'B+' Grade by NAAC

ADMISSION NOTIFICATION 2023– 2024

Applications are invited for the following Regular & Part Time Courses in Hindi at

HYDERABAD/DHARWAD/ERNAKULAM/CHENNAI CENTRES

REGULAR COURSES

M.A. (Semester System) PART TIME : P.G. Dip. in Translation / Hindi Journalism

M.A. (Hindi) Language & Literature : Two years

ELIGIBILITY : i) A pass in B.A./B.Sc./B.Com. (10+2+3 Pattern) with Hindi as a Subject (OR) ii) A Pass in B.A./B.Sc./B.Com. (10+2+3 Pattern) with a Pass in R.B. Praveen OR its equivalent Hindi Examination recognized by the Sansthan.
State Reservation Policy will be followed.

PART TIME COURSES (One Year)

1. P.G. Diploma in Translation 2. P.G. Diploma in Hindi Journalism

ELIGIBILITY : 1. A Pass in B.A./B.Sc./B.Com. (10+2+3 Pattern) with Hindi as a Subject or a Pass in R.B. Praveen OR its equivalent Hindi Examination recognized by the Sansthan.

Application Forms/Prospectus M.A., P.G.D.T., P.G.D.J. : Rs. 600/-

Admission Application forms are available on Sabha's website: www.dbhpscentral.org
Last date for submission of filled up Application : 11-07-2023
Applicants may contact directly to the concerned P.G. Centres.

The Prof. & Head : P.G. Centre, DBHP Sabha, CHENNAI – 8555051958; P.G. Centre, DBHP Sabha, HYDERABAD, (ANDHRA PRADESH&TELENGANA) 9945664379; P.G. Centre, DBHP Sabha, DHARWAD, KARNATAKA – 70190 87077; P.G. Centre, DBHP Sabha, ERNAKULAM, KERALA – 97461 56060

REGISTRAR

दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास

प्रवेशिका के लिए नया पाठ्यक्रम

प्रचारक बंधुओं को सादर प्रणाम। आपको यह सूचित करते हुए हर्ष का अनुभव कर रहे हैं कि सभा की प्रवेशिका पाठ्यक्रम के लिए संशोधित एवं परिवर्द्धित पुस्तकें मुद्रित होकर तैयार हो चुकी हैं। पुस्तकों का विवरण इस प्रकार है :- **प्रवेशिका पाठ्य पुस्तक 1, 2, 3 (व्याख्यानमाला सहित)**

इन पुस्तकों को प्रचारकों एवं विद्यार्थियों की सुविधाओं को ध्यान में रखते हुए तैयार किया गया है। प्रचारकों से विनम्र निवेदन है कि विद्यार्थियों को पाठ्य पुस्तक पढ़ने के लिए प्रोत्साहित करें।

यह भी सूचित करना चाहते हैं कि पुराना पाठ्यक्रम सितंबर 2023 की परीक्षा तक व्यवहार में रहेगा।

इन नए पाठ्य पुस्तकों के अंत में परीक्षा आवेदन पत्र भी होगा। परीक्षा के लिए इसी आवेदन पत्र का प्रयोग करना अनिवार्य है।

पुस्तकें सभी शाखा कार्यालय एवं सेवा केंद्रों में उपलब्ध हैं। **सचिव**

फिजी में संपन्न विश्व हिंदी सम्मेलन में सम्मान प्राप्त करने के अवसर पर कार्यकारिणी समिति की बैठक में सभा के आंध्र एवं तेलंगाना शाखा के अध्यक्ष श्री पी. ओबय्या का सम्मान : 30 अप्रैल, 2023

फरवरी 2023 की सभा परीक्षाओं में उत्तीर्ण अंजली स्कूल, सूर्यापेट के छात्रों को प्रोत्साहित करते हुए सभा के प्रबंध निधिपालक षेक मोहम्मद खासिम : 19 अप्रैल, 2023

ISSN 2582-0885
SRAVANTHI
RNI3108/58
May 2023

Registered News Paper

To

....

....

....

If not delivered, please return to:

Dakshina Bharat Hindi Prachar Sabha – Andhra Pradesh & Telangana
(Provincial Branch of Dakshin Bharat Hindi Prachar Sabha, Madras)
(Declared by Parliament as an Institution of National Importance by Act 14 of 1964)
P.B. No.23, Khairatabad, Hyderabad - 500 004.

हिंदुस्तान को गुलाम बनाने वाले तो हम अंग्रेज़ी जानने वाले लोग ही हैं। राष्ट्र की हाथ अंग्रेज़ों पर नहीं पड़ेगी, बल्कि हम पर पड़ेगी।

- महात्मा गाँधी

Edited, Printed and Published by G. Selvarajan on behalf of the D.B. Hindi Prachar Sabha - Andhra Pradesh & Telangana Khairatabad, Hyderabad - 500 004 and Printed at Hindi Prachar Press, T. Nagar, Chennai - 600 017.